हिन्दी साहित्य जगत और नारी

निधि शर्मा
अिसस्टेन्ट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय
मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत

'' नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।''

जयशंकर प्रसाद की ये पंक्तियाँ सदैव ही स्त्री के महत्व और उनके सम्मानित स्थान को दर्शाती हैं। वह कल्याणी, मंगलकारिणी, पथ–प्रदर्शिका नारी श्रद्धेय ही नहीं, साक्षात 'श्रद्धा' का अवतार है। स्नेह, दया, करूणा, क्षमा, त्याग समर्पण, ममता आदि गुणों को अजस्त्र धारा बनी नारी, जो सुख को विस्तृत कर किसी को भी दुखी नहीं देखना चाहती, जो प्रेयसी, पत्नी और माता के रूप में पुरूष की शुष्कता को मिटाकर अपनी आर्द्र कृपा से सिंचित करती है, जो अपने वक्षस्थल पर संसृति के ज्ञान–विज्ञान को एकत्रित कर अपने हाथों में कर्म–कलश लेकर वसुधा को जीवन रस के सार उपकृत करती है, वह नारी पूज्या है। उसके इस स्वरूप को विस्मृत करना अपराध ही नहीं, पाप भी है।

नारी इस सृष्टि का अनुपम वरदान है। इस समग्र सृष्टि में जो कुछ सुन्दर है, तरल है, सरल है उसमें नारी का ही योगदान है। अन्तर्ब्रह्म रूप से सौन्दर्य सम्पन्न नारी के बिना विधाता का सृष्टि चक्र अधूरा है। प्राचीन काल में भारत में नारी को इसीलिये शक्ति, ज्ञान और ऐश्वर्य का

प्रतीक मान दुर्गा, सरस्वती एवं लक्ष्मी जैसी संज्ञाएँ दी गई। युग एवं परिस्थिति के अनुसार नारी की स्थिति एवं भूमिका बदलती रही है।

भारतीय साहित्य में नारी को असाधारण स्थान प्रदान किया गया है। धार्मिक और लौकिक दोनों प्रकार के साहित्य में नारी के विविध अंकन उसकी विशिष्टता के द्योतक है। समाज–रचना तथा उसके व्यवस्थित विकास में भारतीय नारी की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। आदिकाल से ही शास्त्रों में नारी की महत्ता और उसकी गरिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है की नारी ब्रह्म विद्या है, सृष्टि है, शक्ति है, पवित्रता है और वह सब कुछ है, जो संसार में सर्वश्रेष्ठ रूप से दृष्टिगोचर होता है। वह जन्मदात्री, पालनहार है। मनुस्मृति में कहा गया है–

"पूजाहि गृह दीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च लोकेशुन विशेशोसस्ति कश्चन।"

किसी भी साहित्य का नारी चित्रण नारी के गुणों–अवगुणों से प्रभावित होता है और तभी वह समाज से साहित्य में भी वही स्थान प्राप्त करती है जो उसे समाज द्वारा प्रदान होता है। नारी का 'चरित्र' उसका विशेष गुण होता है और वही गुण उसको उत्थान व उन्नति के शिखर तक पहुँचाने के लिये स्वतः मुखरित हो उठता है।

चिरकाल में नारी सुकुमारता, कोमलता, विनम्रता, त्याग, समर्पण, कर्त्तव्यपरायणता की प्रतीक रही है। वैदिककाल में जहाँ नारी एक रत्न थी, वहीं ब्राह्मण काल में नारी भारी अनर्थ की जड़ मानी गयी। उपनिषद काल, पैराणिक काल तथा महाकाव्य काल में नारी के 'पतिव्रत्य धर्मो का उल्लेख प्राप्त होता है। नारी की जहाँ पूजा होती है वहाँ तो देवताओं का निवास–स्थान बताया है– यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।''

हिन्दी साहित्य जगत की ओर दृष्टि करें तो उसमें नारी के अनेकों रूपों का चित्रण हुआ है।

हिन्दी साहित्य के प्रथम काल आदिकाल (वीरगाथा काल) में नारी के वीरांगना एवंम् कामिनी दोनों रूपों के दर्शन होते हैं, किन्तु उसके

स्वतन्त्र व्यक्तित्व की छाया कहीं दिखाई नहीं देती। हिन्दी के रासो साहित्य में नारी की ओजस्विता की आरती उतारते हुए यह भी कहा गया है कि पुरूष के सुख–दुख में हाथ बँटाने वाली नारी की निन्दा करना अनुचित है। 'पृथ्वीराज रासो' के अन्त में महाराज पृथ्वीराज के बन्दी होने पर संयोगिता के प्राण त्यागने तथा अन्य रानियों के सती होने का भी प्रशंसापूर्ण वर्णन मिलता है।

दूसरी ओर सामंतवादी युग में नारी की स्थिति अच्छी नहीं थी। रासो काव्य नायिकाओं के जीवन की दुर्दशा की कहानी भी कहते हैं। तत्कालीन राजदरबारों में रहने वाले कवि नारी के नख–शिख वर्णन में अत्यन्त रूचि लेते थे। प्रेम एवंम् सौन्दर्य के कुशल चितेरे विद्यापति भी युग धर्म से इतने बंधे थे कि उन्होंने रूप चित्रण में नख–शिक्ष वर्णन की परिपाटी का त्याग नहीं किया।

खुसरो के काव्यों में भी नारी के आदर्श रूप को अभिव्यक्ति नहीं मिली है। हिन्दी साहित्य के आदि युग के अन्तर्गत नारी को हेय एवं तुच्छ ही माना गया है तथा नारी प्रेरक शक्ति कम और भोग–विलास की वस्तु ही अधिक रही है।

भक्तिकाल में कबीरदास जी का नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण उनके युग की सीमाओं से आगे न जा सका। कबीरदास जी ने कई साखियों में नारी की निन्दा की है। ''नारी काली नागिन है जो तीनों लोको का नाश कर देती है।'' ''नारी बुद्धि और विवेक हरने वाली है।'' ''नारी धतूरे के समान जहरीली है।'' ''नारी नरक का कुण्ड है।'' ''सुन्दर स्त्री से तो सूली ही अच्छी है।'' वह कहते हैं –

''कबीर नारी की प्रीति से, केटे गये गरंत,
केटे और जाहिंगे, नरक हसंत हसंत।।''
''नागिन के तो दोये फन, नारी के फन बीस,
जाका डसा ना फिर जीये, मरि है बिसबा बीस।।''

नारी सम्बन्धी कबीर की इतनी कटु उक्तियाँ सम्भवतः उस नारी के प्रति है जो अपने सौन्दर्य से पराय पुरूषों को आकृष्ट करती है। अन्यथा कबीरदास जब ईश्वर के प्रति अपने प्रेम की व्यंजना करते हैं तो स्वंय को 'राम की बहुरिया' मानते हैं। अपने प्रेम को उन्होंने उस स्त्री के प्रेम के रूप में अभिव्यक्त किया है जो अपने पति के विरह में तड़प रही है–

''दुलहिन गावौ मंगलचार, हम घरि आये हो राजा राम भरतार।
तन रति करि मैं मन रति करिहूँ, पंच तत्व बराती।
रामदेव मोहि ब्याहन आये, मैं जोवन मैं माती ।।''

कबीर दास जी नारी प्रशंसा करते हुये कहते हैं कि नारी की निन्दा मत करो। नारी अनेक रत्नों की खान है। नारी से ही पुरूष उत्पत्ति होती है। ध्रुव और प्रहलाद भी किसी नारी की दी देन है –

''नारी निन्दा ना करो, नारी रतन की खान।
नारी से नर होत हैं, ध्रुव प्रहलाद समान।।''

ज्ञानमार्गी संतों ने ही नहीं, प्रेममार्गी कवि जायसी ने भी अपने 'पद्मावत' में पद्मिनी को ब्रह्मों का प्रतीक मानकर उसके रूप एवं गुणों की प्रशंसा की है, किन्तु सामान्य नारी के रूप में नागमती को गोरखधंधा कहा है तथा रत्नसेन द्वारा– 'तुम तिरिया मतिहीन तुम्हारी'' कहलाकर नारी की क्षुद्रता की ओर संकेत किया है। सामाजिक विचार जायसी के प्रायः वैसे ही थे जैसे उस समय जनसाधारण के थे। अरब, फारस आदि देशों में स्त्रियों का पद बहुत नीचा समझा जाता था। वे विलास की सामग्री मात्र समझी जाती थी। प्राचीन भारत की बात तो नहीं कह सकते पर इधर बहुत दिनों से इस देश में भी यही भाव चला आ रहा है। बादल युद्ध में जाते समय अपनी स्त्री का हाथ छुड़ाकर उससे कहता है– तिरिया भूमि खड़ग कै चेरी। जीत जो खड़ग होई तेहि केरी।।''

सगुणधारा के कवि सूरदास जी ने लौकिक आँखों के बिना भी नारी को जिस रूप में देखा है वह पूर्णतः मानवी है। सूर ने न तो नारी को देव–पद पर चढ़ाया है और न ही पद–रज में ढकेला है।

पूरे सूरसागर में उन्होंने कहीं भी नारी (नायिका) कृष्ण से राई रत्ती भी कम नहीं आंकी गई है। सूर ने उसे कृष्ण (पुरूष) के समकक्ष ही स्थान दिया है जो उनकी वैचारिक उदारता का परिणाम है। ब्रज के हर पर्व में गोपियों की सहभागिता बराबरी की है –

"हरि संग खेलत है सब फाग ....
छिटकतिं सखी, कुमकमा केसरि, भुरकति बंदन धूरि।
सोभित है तनु सांझ–समै–घन, आये हैं मनु पूरि।
दसहुं दिसा भयौ परिपूरन, सूर प्रसंग प्रमोद।
सूर विमान कौतुहल भूले, निरखत श्याम विनोद।"

सूरदास जी ने नारी पर न तो किसी प्रकार का लांछन लगाया है और न ही उसे दुख का मूल माना है। उनकी नारी रंगमहल या रनिवास की दीवारों में कैद स्त्री नहीं है। सूर की गोपियाँ छटपटाने के लिये विवश नहीं है। वे स्वतंत्र निर्णय लेने में समर्थ हैं। उनकी आस्था है। यहाँ तक की उद्धव का पांडित्य उन्हें आतंकित नहीं करता बल्कि वे ही उद्धव को बहुत फटकारती हैं–

"कायर बकै लोह से भाग, लड़ैत सूर बखानै।

गोपियों के सटीक तर्क से उद्धव खड़े हो जाते हैं। वे अपने व्यंग्य वाणों से उद्धव को घायल कर देती हैं।

गोपियाँ सभी त्यौहारों और उत्सवों में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेती हैं और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कृष्ण भी अपनी बाल्यावस्था से लेकर युवावस्था तक के विकास में इन्हीं गोपिकाओं का आश्रय लिये दिखाई दिये है–

"गोकुलनाथ विराजत डोल। संग लिये वृषभानु नंदनी,
पहिरे नील निचोल।
कंचन खचित लालमनि मोती ,हीरा जटित अमोल।
झुलवहिं जूथ ब्रज सुन्दरि, हरषित करति कलोल।।"

रामचरित्र मानस के अनुसार भी रामायण काल में स्त्रियों को पुरूष के समान ही अधिकार प्राप्त थे। जब जनक जी के यहाँ से दशरथ सुकुमारों के विवाह की पत्रिका आती है तो राजा दशरथ अपनी पत्नियों को बुलाते हैं–

"राजा सबु रनिवास बोलाई,
जनक पत्रिका बांचि सुनाई।"

यदि नारी के प्रति उपेक्षात्मक, उत्पीडनात्मक और दमनात्मक दृष्टिकोण उस समय के पुरूष का होता है तो राजा कदापि रनिवास को बुलाकर विवाह–पत्रिका नहीं सुनाते।

आधुनिक काल के छायावादी काव्य में नारी को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है, उसे मानव की असीम एवं अमोध शक्ति स्वीकारा गया है। उसे सर्वमंगलमयी, सर्वशक्तिमयी, सृष्टि की अनुपम कृति आदि कहकर उसकी अभ्यर्थना की गई है। महादेवी वर्मा की दृष्टि मे ंभी नारी त्याग, बलिदान, साधना, भक्ति–भावना आदि की साकार मूर्ति है और अमोध शक्ति का भण्डार है। इसीलिये तो नारी के सर्वस्वार्पण का चित्र अंकित करते हुए महादेवी वर्मा ने उसे अनन्त शक्ति सम्पन्न भी घोषित किया है, जिससे वह निस्सीम के लिये मिटना भी जानती है और स्वयं मिटकर उस निस्सीम अनन्त शक्तिशाली को अपनी लघु सीमा में बांधने की अमोध शक्ति भी रखती हैं–

"प्राणपिक प्रिय–नाम रे कह !
मैं मिटी निस्सीम प्रिय में, बह गया बँध लघु हृदय में,
अब विरह की रात को तू चिर मिलन का प्रात रे कह।

अथवा–

"उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे।

अपने काव्य–पथ को आध्यात्मिक जल–निखार कर अमर यात्रा की ओर निरन्तर अग्रसर रहने वाली प्रियसी का आराध्यचिर–चेतन तथा

परम तत्व ब्रह्म ही है और अलौकिक प्रिय के प्रति अपनी प्रणयानुभूति की मौलिक तथा मधुर अभिव्यक्ति करने वाली इस विरह साधिका ने इसे लौकिकता से जोड़ने या अनुभूति शून्य भावना मानने वालों के आक्षेपों को निराधार भी सिद्ध किया है–

"जो न प्रिय पहचान पाती।
दौडती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत सी तरल बन ?"

आधुनिक युग की इस नयी काव्य धारा ने नारी के प्रेम एवं सौन्दर्य का सूक्ष्म चित्रण किया है। सौन्दर्य में नारी–सौन्दर्य तथा प्रकृति सौन्दर्य के विविध रूपों का वर्णन किया है।

छायावाद की सबसे बड़ी विशेषता है नारी के ब्राह्म अथवा नख–शिख वर्णन से हटकर उसकी अन्तरात्मा की शक्ति पर दृष्टि को केन्द्रित करना। जयशंकर प्रसाद तो नव्यतम नारी भावना की उदान्त कल्पना का आदर्श रखने में सबसे आगे रहे हैं। प्रिया का स्पर्श भी उन्हें अलौकिक माधुर्य प्रदान करता है–

"मूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को,
थाम ले अब हृदय इस आहलाद को,
त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं,
प्रेमसी के शून्य–पावन स्थान को।"

प्रसाद इसी प्रकार नारी के आन्तरिक सौन्दर्य पर ध्यान देते हुये उसके हृदय की सुकुमारता, दयाशीलता, क्षमाशीलता तथा ममता आदि गुणों पर स्वयं को न्यौछावर कर देते हैं। नारी का वाह्य सौन्दर्य उन्हें आकर्षित करता है पर उसकी आन्तरिक दीप्ति का प्रभाव आकर्षण को अलौकिक बना देता है। नारी ने इस युग के कवि को अपनी बहुविध शक्तियों से इतना अभिभूत कर दिया कि वह उसमें दिव्य और अतीन्द्रिय सौन्दर्य देखने लगा। प्रसाद नारी के उर में ऊषा का आवास देखते हैं तो उसके स्वभाव में चाँदनी की शीतलता। प्रसाद की –'कामायनी' नारी के इसी सौन्दर्य का उत्कृष्ट उदाहरण है–

"मनु ने देखा कितना विचित्र। वह मातृमूर्ति थी विश्वामित्र।

× × ×

तुम देवि आह कितनी उदार, यह मातृ मूर्ति है निविकार,
हे सर्वमंगले। तुम महती सबका दुख अपने पर सहती ,
कल्याणमयी वाणी कहती तुम क्षमा निलय में हो रहती।"

प्रसाद ने नारी के बाह्य रूप के उदान्त आकर्षण के अभिनव सौन्दर्य को भी चित्रित किया है। इस दिव्य और आह्लादकारी रूप पर कवि मुग्ध होकर कहता है –

"लावण्य शैल राई–सा
जिस पर वारी बलिहारी
उस कमनीयता कला की
सुषमा थी प्यारी–प्यारी।"

वास्तव में प्रसाद की नारी भक्तिकाल के भक्त या संत कवियों की नारी से पूर्णतः भिन्न सौन्दर्य और प्रेम की प्रतिमा है जो सुख को विस्तृत कर किसी को भी दुखी नहीं देखना चाहती है, जो प्रेयसी, पत्नी और माता के रूप में पुरूष की शुष्कता को मिटाकर अपनी आर्द्र कृपा से सिंचित करती है, जो अपने वक्षस्थल पर संसृति के ज्ञान–विज्ञान को एकत्रित कर अपने हाथों में कर्म–कलश लेकर वसुधा को जीवन रस के सार से उपकृत करती है, वह नारी पूज्या है। उसके इस स्वरूप को विस्मृत करना अपराध ही नहीं, पाप भी है। इसी तथ्य को प्रसाद बार–बार उजागर कर समस्त संसार को जाग्रत भी करते हैं।

"काम मंगल से मण्डित श्रेय,
सर्ग, इच्छा का है परिणाम।
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल,
बनाते तो असफल भवधाम।"

प्रसाद जी ही की भॉति पंत जी ने भी नारी को नवीन भाव दृष्टि से देखा है। यह सच है कि छायावादी कविता में ही नारी की प्रधानता है।

छायावाद से पहले भी नारी का चित्रण कवि कर रहे थे किन्तु उनकी दृष्टि पुरूष प्रधान थी। द्विवेदी युग की कविता में नारी उद्धार का पुरूष–दम्भ ज्यादा है, उसके प्रति करूणा कम। पर छायावादी कवियों को नारी के सहज सौन्दर्य ने आकृष्ट किया। पंत जी ''उच्छवास'', ''आँसू'' ''ग्रन्थि'' में एक बालिका के साथ अनुराग में बंधते है उसकी स्मृति में रूप–सौन्दर्य से कल्पना भर जाती है–

''स्नेहमयी, सुन्दरता मयि,
तुम्हारे रोम–रोम से नारि ,
मुझे है स्नेह अपार ,
तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि,
मुझे है स्वर्णागार।''[13]

छायावादी कवियों पर नारी–सुधार–आन्दोलन की धमक भी काफी गहरी है। इससे भी प्रसाद, पंत, निराला आदि कवियों के नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। बींसवी शताब्दी में नारी शिक्षा का जोर बढ़ा और नवजागरण के प्रति नारियाँ भी सतर्क हो गई। प्रथम बार नारी ने मुक्ति की सांस ली और वैयक्तिक प्रेम का उदय हुआ। नारी–प्रेम को इस काव्य में जो स्वच्छन्द दृष्टि मिली वह सम्बन्धहीन और अद्‌भुत है। पुरानी नैतिकता के बन्धन तोड़कर वह पुरूष से मिलने में स्वतन्त्र हो गई–

''मुक्त करो नारी को मानव ,
चिरंवदिनी नारी को,
युग–युग की बर्बर कारा से
जननी, सखी, प्यारी को।
छिन्न करो सब स्वर्ण पाश,
उसके कोमल तन–मन के,
वे आभूषण नहीं दाम –उसके बंदी जीवन के।''

पंत के प्रेम में बालपन की सरलता का सौन्दर्य है। डॉ0 नामवर सिंह के शब्दों में '' इसमें न तो मधु की सी प्रगाढ़ मिठास है, न ज्वार का

उबाल। इसमें छोटे से पहाड़ी झरने की सी तरलता है।'' पंत ने स्थूल नारी सौन्दर्य की ओर न जाकर उसके भाव–सौन्दर्य पर अपने कवि मन को केन्द्रित किया। यथा–'' तुम्हारी आँखों में कर वासु प्रेम ने पाया था आधार।'' ''नारी के हृदय में झांक कर पाया–चाँदी का स्वभाव में वास, विचारों में बच्चों की सांस ।'' यह सौन्दर्य कामोत्तेजना उत्पन्न नहीं कर सकता–पावन गंगा स्नान ही करा सकता है। पंत जी ने अपना दृष्टिकोण इस प्रकार नारी को लेकर व्यक्त किया है कभी कवि नारी को–अकेली सुन्दरता कल्याणी, सकल ऐश्वर्यो की सन्धान! देवि माँ, सहचरी, प्राण कहता है तो कभी प्रेम की जननी मानता है–

''तुम जननी, प्रीति की स्रोतस्विनी,
तुम दिव्य चेतना दिव्यमना,
तुम स्वर्ण किरण की निर्झरिणी,
आभा देही, आभा बसना।''

पंत जी ने सामंतवादी नारी का रूप सौन्दर्य चित्रण करते हुये उसको नर की छायामात्र बताते हुए लिखा है –

''यह नर की छाया नारी
स्थिर नमित नयन पद विजड़ित
वह चकित भीत हिरनी–सी
निज चरण चाप से शंकित

×   ×   ×

वन्दनी काम कारा की
आदर्श नीति परिचालित ।।''

कविवर पंत जी ग्रामीण नारी के सौन्दर्य का भी अद्भुत चित्रण किया है। जिसमें उसके शारीरिक सौन्दर्य के साथ–साथ भाव–सौन्दर्य का भी अनोखा सम्मिश्रण है–

''है माँस पेशियों में उसके दृढ़ कोमलता
संयोग अवयवों में अश्लथ उसके उरोज

कृत्रिम रीति की नहीं हृदय में आकुलता
उद्दीप्त न करता उसे भाव कल्पित मनोज

× × ×

कर रही मानवी के अभाव की आज पूर्ति
अग्रज नागरी की यह ग्रामवधु निश्चित।।''

मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी नारी को उदात्त दैवी जैसा रूप देकर शक्ति और पतिव्रता, सात्विकता के रूप में प्रतिष्ठित किया है। परन्तु केवल पूज्य भाव जगाने की वह घड़ी नहीं थी बल्कि नारी को सहयोगिनी के रूप में स्वीकार करना समय की आवश्यकता थी। गुप्तजी ने ''साकेत'', ''यशोधरा'', ''विष्णुप्रिया'', रत्नावली जयिनी'' काव्य रचनाओं में नारी को उच्च और मधुर प्रेरणामयी सहयोगिनी के रूप में दिखाने का प्रयास किया है। हिन्दी साहित्य के काव्य क्षेत्र में भी कुछ ऐसे नारी पात्रों की उपेक्षा हो रही थी, जिसके त्याग, उदारता और वेदना की अब तक कहीं भी चर्चा नहीं हुई थी। गुप्तजी ने 'उर्मिला' और 'यशोधरा' में राहुल जननी की वेदना ने 'साकेत' में 'उर्मिला' और 'यशोधरा' में राहुल जननी की वेदना को स्वर देकर नारी के अस्तित्व बोध को अभिव्यक्त किया है।

गुप्त जी की आधुनिक काव्य चेतना पर नवजागरण की नारी सम्बन्धी विचाराधारा का बहुत ही गहरा और व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। देश की समकालीन स्थिति में नारी की सोचनीय स्थिति पर दुख व्यक्त करते हुये वे नारी–शक्ति की महत्ता को इस तरह व्यक्त करते हैं–

''अनुकूल आद्या शक्ति की सुखदायिनी जो स्फूर्ति है,
सद्धर्म की जो मूर्ति और पवित्रता की पूर्ति है,
नर–जाति की जननी तथा शुभ शांति की स्रोतस्वति
हा! दैव नारी जाति की कैसी यहाँ है दुर्गति।।''

गुप्त जी ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरूष के कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने के लिये नारी को प्रोत्साहन दिया और उसे स्वावलम्बी

बनाने की प्रेरणा प्रदान की। ''साकेत'' में सीता के इन उद्‌गारों में नारी के स्वतन्त्र और स्वावलम्बी जीवन की झलक मिलती है–

''औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ
श्रमवारी बिन्दु फल स्वास्थ्य शुक्ति फलती हूँ
अपने अंचल से व्यंजन आप झलती हूँ।''

यशोधरा के मन में वेदना के साथ ही नारी जाति के अस्तित्व के प्रति जागरूकता का भाव गुप्त जी की निम्न पंक्तियों में स्पष्ट दिखाई देता है–

''सिद्धी–मार्ग की बाधा नारी फिर उसकी क्या गति है,
पर उनसे पूछँ क्या जिनको मुझसे आज विरति है,
अर्ध–विश्व में व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है,
मैं भी नहीं अनाथ, जगत में मेरा भी प्रभु पति है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त अवलोकन से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में नारी को समाज के अन्तर्गत आदरणीय एवं अति उच्च स्थान प्राप्त था तब उसकी शिक्षा–दीक्षा का उसके मस्तिष्क तथा हृदय की समुन्नति का पूरा–पूरा अवकाश था और सामाजिक जीवन मे ंप्रत्यक्ष रूप से भाग लेने का पूर्ण अधिकार था। तत्पश्चात् पौराणिक काल मे ंनारी का सामूहिक रूप यद्यपि पर्याप्त रूप से आकर्षक तथा भव्य बना रहा, किन्तु उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व पर प्रतिबन्धों का श्री गणेश हो गया। कालान्तर ने हिन्दी साहित्य के आदि युग के अन्तर्गत नारी को सिद्धान्तों ने वासना की मंजुषा बना डाला और भक्तिकाल में एक ओर उसे मुक्तिमार्ग की बाधा माना तो दूसरी ओर सीता, पार्वती की वंदना भी की गयी। आधुनिक काल में नारी शिक्षित होकर स्वातन्त्र्य जीवन–यापन के लिये अग्रसर हुई और अपने अहं भाव को जाग्रत करके कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ने लगी। नारी की स्वतन्त्र अस्मिता, कार्य करने की कुशलता और बुद्धिमता को पहचानने का प्रयास

किया गया। देश के विकास में सहयोग देने वाली महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उसे पहचाना गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मध्यकालीन भारतीय साहित्यिक कवि– पृष्ठ सं0– 95, 9, 94, 95, 96, 138, 139, 156,– डॉ0 महेन्द्र कुमार मिश्र 157, 158, 159*
2. *प्राचीन भारतीय साहित्यिक कवि– पृष्ठ सं0– 57, 144 – डॉ0 महेन्द्र कुमार मिश्र*
3. *हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि– पृष्ठ सं0– 88, डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना*
4. *सूरसागर सार –पृष्ठ सं0– 123– डॉ0 धीरेन्द्र शर्मा*
5. *सूर संचयन–पृष्ठ सं0– 79 – डॉ0 शर्मा मुंशीराम*
6. *हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि–पृष्ठ सं0– 355, 306, 307 – डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना*

हिंदी कथा–साहित्य जगत में नारी का योगदान

नीरज शर्मा
हिंदी विभाग
बर्द्वान विश्वविद्यालय
पश्चिम बंगाल, भारत

हिंदी कथा–सहित्य जगत की चर्चा हो और महिला रचनाकारों के योगदान की चर्चा ना हो ऐसा हो ही नहीं सकता। हिंदी में महिलाओं द्वारा लिखे गए साहित्य की जब चर्चा होती है, तब उसमें मौखिक परंपरा का हिस्सा रहे साहित्य की भी चर्चा होती है। प्राचीनकाल से ही स्त्रियों का योगदान पुरुषों के समकक्ष दिखलाई पड़ता है, अगर नारी के योगदान की चर्चा हो तो वह किसी भी क्षेत्र में पुरूष से पीछे नहीं दिखलाई पड़ती परंतु इतिहास के पन्नों में उनका ज्यादा जिक्र नहीं हुआ है। भक्तिकाल से ही हिंदी साहित्य में महिला लेखिकाओं का योगदान दिखलाई पड़ता है परंतु भक्तिकाल की महिला रचनाकारों द्वारा लिखा गया साहित्य अप्राप्य है, इन महिला रचनाकारों ने जो कविताएँ लिखी उसमें भक्तिकाल की स्त्री जनित वेदना और विद्रोह की अभिव्यक्ति हुई थी। इन कवयित्रियों में मीराँ और लल्लेश्वरी का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। मीराँ और लल्लेश्वरी को यदि हम अपवाद माने तो बाकी सभी कवयित्रियों द्वारा रचा गया साहित्य अनुपलब्ध है। चूँकि मीरा के पद तो राजस्थान की नीच जातियों के घर–घर में गाए जाते थे, इसलिए वह आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। ठीक यही स्थिति कश्मीर की लल्लेश्वरी की भी थी, उनकी भी रचनाएँ घर–घर में गायी जाने के कारण साहित्य में प्राप्य हैं। कबीर की पत्नी लोई

भी कविता लेखन के क्षेत्र में थीं, पर लोगों ने कबीर को तो संकलित किया पर लोई को विस्मृत कर गए। रत्नावली भी कवयित्री थी, पर तुलसी के आगे रत्नावली को भी विस्मृत कर दिया गया। कहने का तात्पर्य यह कि साहित्य में पुरूषों के वर्चस्व के चलते स्त्री लेखन सदा से विस्मृत होता रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष के समय जो साहित्य उभरकर सामने आता है उसमें देशकालिक परिस्थितियों के चित्रण के साथ ही साथ देश प्रेम भी परिलक्षित होता है। ऐसी महिला रचनाकारों में महादेवी वर्मा, सरोजिनी नायडू, सुभद्रा कुमारी चौहान तथा उषा देवी मिश्रा आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। इन महिला लेखिकाओं द्वारा लिखा गया साहित्य हिंदी साहित्य में सशक्त लेखन का प्रमाण है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि महिलाओं का लेखन ज्यादातर महिला विषयों पर ही केंद्रित दिखलाई पड़ता है। इसी कारण इस लेखन पर सीमित दायरे में रचनाओं की प्रस्तुति का आरोप भी लगा। इस स्थिति पर विचार करते हुए समकालीन लेखिका सूर्यबाला लिखती हैं– ''अनुभव तो यही कहता है कि लेखिकाओं का क्षेत्र अधिकतर घर और नारी मन रहा है जबकि पुरुष लेखन का घर बाहर दोनों लेकिन हम इस क्षति की पूर्ति भी तो कर लेती हैं, नारी मन की अथाह गहराइयों में बैठकर और इतना तो मैं भी दावे के साथ कह सकती हूं कि नारी के अंदर इतने गुण, तिलस्मी गुफाएं और प्राचीर हैं कि इन्हें भेद पाना आसान नहीं–जितनी सत्यता और ईमानदारी से नारी भेद सकती है पुरुष नहीं।'' (स्वतंत्र्य पूर्व–हिंदी महिला लेखिकाओं की कहानियों का अध्ययन : डॉ. आलीस, पृ.– 20)

सुप्रसिद्ध कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान मानती है कि "स्त्रियों के सहयोग के बिना मानव साहित्य संपूर्ण नहीं हो सकता। एक पुरुष किसी पुरुष की हृदयानुभूति को सफलतापूर्वक प्रकट कर सकता है। परंतु वह जब स्त्रियों की अनुभूति को प्रकट करने जाता है तब उसे विवश होकर कल्पना से ही काम लेना पड़ता है"। (साहित्य अमृत, अप्रैल 1999, पृ.– 45)

स्वतंत्रता पूर्व महिला कथा लेखन की जब चर्चा होती है तो 1890 में 'सुहासिनी' की चर्चा भी होती है। यह उपन्यास एक अनाम लेखिका का उपन्यास है, ठीक इसी समय लाला श्रीनिवास दास द्वारा रचित 'परीक्षा गुरु' प्रकाशित होता है। इसके पश्चात 1908 में प्रियंवदा देवी का 'लक्ष्मी', गोपाल देवी का 'लक्ष्मी बहू' 1912 में, भगवान देवी का 'सौंदर्य कुमारी' 1912 में प्रकाशित होता है। और हिंदी की पहली कहानी लेखिका के रूप में राजेंद्र बाला घोष सामने आती हैं। उन्हें कहानी के इतिहास में बंग महिला का संबोधन प्राप्त है। बंग महिला एक प्रखर और तेजस्विनी रचनाकार थीं। स्त्री की पारिवारिक सामाजिक स्थितियों और समस्याओं से संबद्ध उनका साहित्य निरंतर 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित होता रहता था। परंतु कुछ विद्वान इस दावे पर विवाद पैदा करते हैं। "वैसे पहली कहानी के स्त्री लिखित होने का यह दावा विवादास्पद है। नि:संदेह इसके पीछे एक स्त्री को उसके प्राप्य श्रेय से वंचित रखने की इच्छा जैसे किसी कारण की कल्पना करना कदाचित संबंध आलोचकों की नीयत पर अकारण संदेह का मामला समझा जा सकता है"। (वर्तमान साहित्य, शताब्दी कथा विशेषांक, जनवरी–फरवरी 2000, पृ.– 182)

कथा रचना के क्षेत्र में महिलाओं का श्रृंखलाबद्ध आगमन 1922 ई. से माना जाता है। 'चाँद' और 'माधुरी' जैसी पत्रिकाओं का प्रकाशन महिलाओं की इच्छा रुचि तथा बौद्धिक क्षमताओं के विकास को ध्यान में रखते हुए किया गया। शिवरानी देवी का इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनकी पहली कहानी 1927 में साहस नाम से 'चाँद' पत्रिका में प्रकाशित हुई। सन 1915 से लेकर सन 1927 तक के समय में बहुत ज्यादा लेखिकाओं का योगदान नहीं दिखलाई पड़ता है।

इस समय की कहानियों में स्त्री सिर्फ अपनी साक्षरता की सूचना देती हुई दिखाई पड़ती है और विषय के रूप में परंपरागत मर्यादाएँ और मूल्य निभाने का संकल्प ही दिखलाई पड़ते हैं। ऐतिहासिक–पौराणिक

आख्यान भी मिलते हैं। कुछ कहानियों में स्त्री के विरुद्ध हो रहे सामाजिक अन्याय का भी चित्रण है, कुछ कहानियों में राष्ट्रीय जागरण का स्वर भी दिखलाई पड़ता है। उदाहरण के लिए 'नवीन नेता'– बलवती देवी, 'हिंदमाता का विलाप' – हेमंत कुमारी चौधरानी आदि।

शिवरानी देवी के साहित्य के साथ स्त्री चेतना भी पनपती है। इनके साहित्य में स्त्री के जीवन की विडंबना पर प्रकाश डाला गया है। यह स्त्रियों के भावनात्मक उद्‌गार है जो सर्वप्रथम पर्दा, बाल वैविध्य, विधवा की स्थिति तथा स्त्री सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषयों के रूप में पाठकों के समक्ष कहानियों में उकेरे गयें हैं। विपरीत स्थितियों में जीवन यापन करने की मजबूरी पर एक दृष्टिपात हैं यह रचनाएँ।

साहित्य तब राजनीतिक और सामाजिक चेतना का ही मोर्चा माना जाता था। यह विषय उस युग की आधार भूमि है। उस समय स्त्री की भागीदारी ही महत्वपूर्ण मानी गई है। इस काल की रचनाओं में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना भी राजनीतिक चेतना का ही आयाम मानी गयी, और स्त्री द्वारा अभिव्यक्ति के ये प्रयास विद्रोही चेतना का लक्षण माने गए। शिवरानी देवी की कहानियों में स्त्री के जीवन की वैयक्तिक स्थितियों और सामाजिक स्थितियों का दबाव है साथ ही साथ एक अलग दृष्टि और परिप्रेक्ष्य है। अन्याय की अन्याय के रूप में पहचान और उसका निर्भय हो कर चित्रण रचनाकारों की अपनी विशेषता रही है। उनकी मूल्य चेतना स्वाधीनता संग्राम की उपज थी और वे राजनीति के प्रति सजग थीं। उन्होंने स्वाधीनता संग्राम में भी हिस्सा लिया उनकी कहानियों में कथानक के स्थान पर उन्हीं स्थितियों और समस्याओं को अभिव्यक्ति मिली जिनके कारण स्त्री का जीवन नरक था। यह वह समय था जब मध्ययुगीन अवरोधों से बाहर निकालकर स्त्री को उसकी नई भूमिका समझाई जा रही थी। उसके लिए नए संवाद गढ़े जा रहे थे। जब प्रेमचंद के प्रत्यक्ष यथार्थ और जयशंकर प्रसाद के काव्यात्मक पुनर्सृजन के स्थान पर भी गांधी, मार्क्स और फ्रायड के विचार और उनकी विचारधाराएँ संसार की नई खोज

का अस्त्र बनकर रचना जगत में प्रविष्ट हो रही थीं। उस समय यथार्थ को उसकी समग्रता में पकड़ने के लिए आवश्यक था, इन विचारों के अलग–अलग आयामों की पहचान कर इसे औजार की तरह ग्रहण किया जाए। पर वह तो विश्व दृष्टियों का पर्याय बनाकर लाए गए थे जिन्होंने यथार्थ की समझ को खंडित करने का कार्य किया। उसी समय के आसपास हिंदी साहित्य में लेखिकाओं तथा कवयित्रियों की बड़ी संख्या स्त्री जीवन में आने वाले परिवर्तन और नई सामाजिक चेतना का भाव लेकर रचनाकर्म में संलग्न होती दिखाई पड़ती है। इन लेखिकाओं की कहानियों में जहाँ प्रगतिशील रुझान मिलते हैं, वही विशुद्ध आवेग तथा रूमानियत भी दिखलाई पड़ती है। पर सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण बात लेखिकाओं के लिए यह रही कि उसे अभिव्यक्ति स्वीकार किया गया, साहित्यिक राजनीति नहीं। स्त्री के अंतर्मन के चीत्कार को दर्ज करने का माध्यम यह कहानियाँ प्रगतिशील भी हैं।

स्वतंत्रता पूर्व प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'माधुरी' तथा अन्य पत्र–पत्रिकाओं में नारी अस्मिता का स्वर प्रधान हो उठा था 'माधुरी' में प्रकाशित अनेक कहानियों में महिला के अधिकार को लेकर प्रश्न उठाए गए। इन पत्र–पत्रिकाओं की नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण स्थापना में अपनी अलग भूमिका रही है। 'माधुरी' के अगस्त 1926 अंक में इंद्र का लेख 'महिलाओं के अधिकार' उपशीर्षक: जनतंत्र शासन प्रणाली और महिलाएं विशेष उल्लेख है। इस लेख में अमेरिकी फ्रांसीसी क्रांति उसके आदर्श उनकी स्वतंत्रता समानता या मातृत्व के नारे तथा जनवाद के मूल तत्त्व की समूची विवेचना की गई है।

'माधुरी' अक्टूबर 1926 अंक में प्रकाशित कौशल्या देवी की व्यंग्यात्मक टिप्पणी 'हिंदू कन्या' अपने समय के अनुरूप बहुत ज्यादा उग्र और परिवर्तनकारी मानी गई। यहाँ लेखिका नैतिकता, सदाचार तथा मध्य युग के मूल्यों पर तीखा प्रहार करते हुए स्त्रियों के निर्णय की स्वतंत्रता–अस्मिता तथा प्रेम का उचित प्रतिपादन करती हैं।

1930 से लेकर 1940 के बीच जिन महिला लेखिकाओं ने स्त्री मन को मुखर किया उसमें उषा देवी मित्रा का नाम भी आता है उनके प्रमुख उपन्यास– वचन का मोल, पिया, जीवन की मुस्कान, पथचारी, नष्ट नीड तथा कहानियाँ– संध्या, पूर्वी रात की रानी, मेघ मल्हार, महावर, नीम, चमेली आदि हैं। इन्होंने नारी के कोमल मन के अंतस में व्याप्त व्यथा का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। उषा देवी का लेखन स्त्री की कलात्मक मूल्यवत्ता का प्रारंभ भी था।

सत्यवती मलिक ने अपनी रचनाओं में निम्नवर्गीय पात्रों के चित्र प्रस्तुत किए और इसके साथ ही साथ उन्होंने प्रमुख रूप से बालमन का बड़ी सूक्ष्मता और अंतरंगता से चित्रण किया है। दो फूल, वैशाख की रात, दिन–रात, नारी ही देगी साथ, उनके प्रमुख कहानी संग्रह माने जाते हैं।

कमला चौधरी के साहित्य में समाज और राजनीति सब का वर्णन दिखलाई पड़ता है। उन्होंने भी स्वाधीनता आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया था उनकी कहानियाँ– उन्माद, पिकनिक, यात्रा, बेलपत्र नामक संग्रह में संग्रहित हैं। उनकी कहानियों में विशेष बात यह है कि वह अपनी कहानियों में नायिका की व्यथा और उसके मानसिक द्वंद को सामाजिक मर्यादाओं के आलोक में प्रस्तुत करती हैं।

सुभद्रा कुमारी चौहान मूलत: कवयित्री थीं किंतु समय के प्रभाव में पडकर उन्होंने भी राष्ट्रीय आंदोलन से प्रेरित होकर राजनीतिक कहानियों की रचना की उनका विशेष आग्रह नवजागरण की दिशा में प्रेरणा का रहा है। कथ्य की दृष्टि और युग से संप्रेषित आस्था तथा विचारधारा के धरातल पर यह कहानियाँ अप्रतिम कही जा सकती हैं। बिखरे मोती, उन्मादिनी उन्मादिनी इनके कहानी संग्रह हैं।

चंद्रकिरण सोनरेक्सा भी प्रगतिशील विचार तथा यथार्थवादी जीवन दृष्टि को अभिव्यक्त करने वाली लेखिका हैं। 'आदमखोर' इनका प्रसिद्ध कहानी संग्रह रहा है जिसमें उन्होंने सामाजिक विसंगतियों तथा विशेष विषमताओं पर प्रकाश डाला है।

ओमवती देवी की कहानियाँ निम्नवर्ग और मध्यवर्ग के पात्रों को रेखाचित्र शैली में प्रस्तुत करती हैं इनकी कुछ कहानियों का स्वर व्यंग प्रधान रहा है अपनी कहानियों के मूल में इन्होंने उच्च वर्ग को ही अपने प्रहार का विषय बनाया है। और यह सिद्ध कर दिया है कि यह दूसरों के रक्त पर जीवित रहने वाले परजीवी हैं। निरूसर्ग, धरोहर, स्वप्न–भंग, हिना इनके कहानी संग्रह हैं। सुमित्रा कुमारी सिन्हा ने अपनी कहानियों में दांपत्य और प्रेम के टकराव को चित्रित करने का प्रयास किया है। "1970 के पश्चात स्त्री लेखन में अस्तित्व की तलाश का जो स्वर मुखर होता है उनमें सुमित्रा कुमारी सिन्हा की गणना की जा सकती है। स्त्री के सृजन संसार में वे प्रथम सचेत विद्रोहिनी हैं"। (शताब्दी कथा साहित्य, जनवरी– फरवरी 2000, पृ.– 188)

उपर्युक्त विवेचन को देखते हुए हम कह सकते हैं स्त्री के भीतर का आवेग उसे रचनात्मक कला कौशल प्रदान करता है। स्वतंत्रता पूर्व की महिला लेखिकाओं द्वारा रची गई कहानियाँ उनकी अपनी अस्मिता के प्रति सचेत होने की कहानी है। जिसमें अपने आसपास के परिवेश से जुडाव है तथा वे भारतीय संदर्भों में नारी के लिए परंपरा और आधुनिकता के द्वंद से भी टकराती हैं।

स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में समाज बदलता है। स्वातंत्र्योत्तर समाज का ढाँचा औद्योगिकीकरण, दो विश्व युद्धों का प्रभाव और ब्रिटिश उपनिवेश के प्रभाव से निर्मित हुआ ढांचा है। विश्व में हुए महायुद्धों के कारण संसार के समक्ष नई समस्याएँ उपस्थित हुई हैं। मानव व्यवहार या मानव अस्तित्व से जुड़ी समस्याएँ मनुष्य को मेटा फिजिकल विचारणा से यथार्थ की ओर लाती हैं। इनका सीधा प्रभाव मानव मूल्यों पर पड़ता है। प्रचलित और स्वीकृत मानव मूल्यों की निरर्थकता मनुष्य को आश्चर्य चकित कर देती है तथा यह मनुष्य का अपने अस्तित्व से पहली बार सामना भी कराती हैं। साहित्य भी मूल्यों के इस परिवर्तन और अस्तित्व संकट से अछूता नहीं रह जाता। "पूँजीवाद के दौरान नारी वर्ग ने भी अपने अस्तित्व पर संकट को

अंतस से पहली बार अनुभूत किया और वह आर्थिक निर्भरता, सामाजिक समानता के प्रश्नों को लेकर विश्व परिदृश्य पर उपस्थित हुई"। (दुर्ग द्वार पर दस्तक, कात्यायनी, द्वितीय संस्करण– 1996, पृ.– 71)

विवाह अथवा परिवार की संरचनागत बनावट, राजनीतिक, सामाजिक तंत्र के शोषण तथा पुरुष वर्चस्व के अनेकों सामाजिक रूपों तथा उनके सांस्कृतिक मूल्य संरचनाओं पर सीधे–सीधे आमने सामने खड़े होकर प्रश्न करने का साहस स्वातंर्त्योत्तर परिवेश की उपज है। स्वातंर्त्योत्तर परिवेश में महिलाओं को नई अंतर्वस्तु, नई भाषा, नए विधान और नए स्थापत्य प्राप्त होते हैं। राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के संदर्भ में महिलाओं की जो अपनी जातीय पहचान तथा जनवादी अधिकारों की मांग की चेतना विकसित हुई थी वह 60 एवं 70 के दशक में नए विद्रोही रूप में दिखलाई पड़ती है। 80 के दशक की स्त्री अपनी स्वतंत्र पहचान, स्वतंत्र अस्तित्व तथा पृत्तसत्तात्मक ढ़ाँचे के प्रतिरोध की मानसिकता और सामाजिक भूमिका में अपने अस्वीकार के चलते उत्पन्न होती है।

प्रसिद्ध लेखिका कात्यायनी मानती हैं कि "आर्थिक उपनिवेशवाद के वर्तमान दौर का नारीवादी लेखन अपना दृष्टिकोण और अपनी भाषा ना तो इतिहास के उस दौर से उधार ले सकता है। जब राष्ट्रीय मुक्ति और बुर्जुआ जनवाद की बहाली का संघर्ष जारी था। और ना ही रुग्ण–विकलांग पूँजीवादी समाज–विकास के उस दौर से, जबकि आर्थिक नव उपनिवेशवाद की शुरुआत नहीं हुई थी। साठ के दशक में पश्चिमी आंदोलनों से जन्मे लेखन के नारे–मुहावरे भी इसके लिए उपयोगी नहीं। आज का दिक–काल संदर्भ पृथक है। अतीत के संघर्ष और सृजन की परंपरा हमारे लिए उपयोगी है, पर उस परंपरा का नए सिरे से आविष्कार करना होगा। (दुर्ग द्वार पर दस्तक, कात्यायनी, द्वितीय संस्करण– 1996, पृ. – 55)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात हिंदी साहित्य में कविता की जगह कथा साहित्य का महत्व स्थापित होता हुआ दिखाई पड़ता है। पिछले

लगभग 30 वर्षों से कहानियों और उपन्यासों के अंतर्गत मानव जीवन की जटिल अनुभूतियों तथा विविध अनुभव का चित्रण होने के कारण परिवर्तन और प्रयोग होते रहे हैं। महिला लेखन के अंतर्गत भी यही केंद्रीय विधि दृष्टव्य होती है। सच तो यह है कि समकालीन महिला लेखन की सही पहचान कथा–साहित्य ही कराता है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है की इसका यह अर्थ यह नहीं कि कविता नाटक आदि में नारी चेतना की सफल अभिव्यक्ति कभी नहीं होती या कोई महिला साहित्यकार इस विधा में सफल नहीं दिखलाई पड़ती। रचनाकारों की पहचान कहानियों तथा उपन्यासों से ही अधिक बनी है। अतः मानना चाहिए की कहानी या उपन्यास स्त्री के भावबोध को प्रकट करने में ज्यादा समर्थ है।

संपूर्ण विश्व में महिलाओं की स्थिति का निर्धारण दो पैमानों पर आर्थिक और सेक्स के आधार पर होता है। इन दोनों ही धरातल पर स्त्री सदैव कमजोर रही है। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वर्तमान हिंदी महिला लेखन में यह दोनों प्रमुख बिंदु रहे हैं। इन दोनों के ही इर्द–गिर्द समूचा महिला लेखन गतिशील रहा है कहानीकार या उपन्यासकार इन दोनों को चित्रित करने में सक्षम रहा है जबकि कविता की जमीन इन निजी अनुभवों को गहरी संवेदना के चलते अभिव्यक्त नहीं कर पाई। वास्तविकता यही है कि संपूर्ण महिला लेखन इन दो केंद्र बिंदुओं पर ही घूमता रहा है। इस कारण महिला लेखिकाओं की आलोचना भी सामने आई डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल भी मानते हैं कि "हिंदी में ऐसी महिला लेखकों की कतार बड़ी है जो एलीट वर्ग की हैं। जिनके पति बड़े पदों पर हैं और बच्चे नामी पब्लिक स्कूलों में पढ़ कर एम.बी.ए. कल्चर गह चुके हैं। सुरक्षित सुविधा–संपन्न महिलाएं साहित्य को शौक में बदल कर लिख रही हैं। इसलिए ज्यादातर की कविता कहानी में सेक्स का एक पूरा विषय है। हर औरत की भूख में अन्य का चक्कर है। एक नया कोकशास्त्र इनके उत्तर आधुनिक चिंतन में रस निष्पत्ति पा रहा है। इसलिए पूरा नारीवादी लेखन ना कहिए, उसका ज्यादातर हिस्सा आनंद की सिद्धावस्था है। इसमें

अश्लील अनैतिक वीभत्स जैसे शब्दों का अर्थ खोजना व्यर्थ है। (हंस सम्पादकीय, जनवरी–फरवरी, 1998, पृ.– 05) आजकल यही एलीट वर्ग समाज की नियामक शक्ति के रूप में कार्य कर रहा है और महिला लेखन में यदि यही वर्ग हावी है तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

डॉ राजेंद्र यादव भी नारी और सेक्स की पूरकता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "दुनिया की शायद ही कोई ईमानदार नारी–कथा हो जो सेक्स–कथा ना हो। जिस समाज में हजारों साल से नारी को सिर्फ सेक्स–आब्जेक्ट बना कर रखा गया हो वहाँ सेक्स विहीन नारी–कथा या तो हवाई आदर्शवाद है या जानबूझकर रचा गया झूठ। पुरुष सेक्स की चर्चा उसकी मर्दानगी या पुरुषार्थ की शौर्य गाथा है, स्त्री सेक्स श्लीलता–अश्लीलता की एकमात्र कसौटी। यह स्त्री को कमर से ऊपर और नीचे बाँट देने की पुरुष साजिश होना है– यानी देवी और वेश्या ध्रुवीकरण"। (हंस सम्पादकीय, जुलाई, 1998, पृ.– 06) स्वतंत्रता के पश्चात नारी विषयक दृष्टिकोण बदलता है और बदलती है नारी रचनाकारों की सोच उसका कारण था नारी के जीवन में नई चेतना की जागृति नारी के इस बदलते दृष्टिकोण को व्यापक रूप से साहित्यिक विधा उपन्यास के अंतर्गत चित्रित किया गया। नारी समस्याओं का वर्णन इस समय के उपन्यासों के मुख्य विषय रहे। इस समय लिखे गए उपन्यास नारी की समस्याओं स्त्री–पुरुषों के संबंध स्त्री की मानसिकता को पूरी तरह से अभिव्यक्त करते हैं।

कृष्णा सोबती का उपन्यास 'डार से बिछड़ी' पाशों नामक युवती के शोषण की कथा है, 'मित्रो मरजानी' उपन्यास विवादास्पद रहा एक ऐसी युवती जो परंपरागत बंधनों में रहना स्वीकार करती है और अपनी अतृप्त यौन इच्छाओं का खुलेआम सबके सामने प्रदर्शन करती है। यह नारी आंतरिक एवं बाह्य दोनों भावनाओं से लड़ती हुई नजर आती है। नारी मन की अतृप्ति का ऐसा वर्णन किसी और उपयन्यासकार ने नहीं किया। 'सूरजमुखी अंधेरे के' में लेखिका सेक्स के स्वरूप को उजागर करती हैं।

मेहरून्निसा परवेज का 'उसका घर' नारी के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करता है इस उपन्यास में दफ्तरों में होने वाले नारी शोषण का चित्रण किया गया है। उषा प्रियंवदा के 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेष यात्रा' महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। 'शेष यात्रा' उपन्यास की नायिका अनु एक ऐसी स्त्री पात्र है जो पति द्वारा तलाक ना दिए जाने के बावजूद अपना जीवन स्वतंत्र ढंग से जीती है। 'पचपन खंभे लाल दीवारें' की सुषमा परिवार के दायित्व हेतु अपनी इच्छाओं को मारती हुई दिखाई पड़ती है, इसी कारण वह नील के प्रेम को भी अस्वीकार करती है। उषा यादव कहती हैं कि "इसकी कथा नायिका सुषमा आज के परिवर्तित परिवेश में पारिवारिक उत्तरदायित्व का वहन करती, संघर्षों के उत्तप से पल–पल झुलसती और बदलती सामाजिक मान्यताओं के तहत एक नई प्रेम वृत्ति का पोषण करती दिखाई देती है। (हिंदी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना– डॉ उषा यादव, पृष्ठ सं– 77)

शशि प्रभा शास्त्री के उपन्यास 'नावें' की मालती घर परिवार के साथ साथ नौकरी भी करती है अन्य कार्य भी करती है पर घरवाले उससे सिर्फ वेतन का संबंध रखते हैं और वह संपूर्ण उपन्यास में शोषित तथा उपेक्षित दिखाई पड़ती है। 'सीढ़ियां' उपन्यास में नारी की पहचान को दिशा देने का प्रयास किया गया है। मानसी निराश्रित होते हुए भी पढ़ाई पूर्ण कर डॉक्टर बनती है अपनी अलग पहचान बनाती है अपनी उम्र से कम उम्र के नायक से प्रेम करके भी शादी नहीं कर पाती इस उपन्यास में सुशिक्षित एवं आत्मनिर्भर नारी का द्वंद प्रस्तुत किया गया।

दीप्ति खंडेलवाल अपने उपन्यासों में नारी के त्याग, कपट, स्नेह, पति परायण गुण को भरने की चेष्टा करती हैं। उनके 'प्रिया' उपन्यास में नायिका प्रिया एक ऐसी अभिशप्त नारी की कहानी है जो देवदास को भी पाकर पारो न बन सकी। प्रिया का नारीत्व कामना बनकर रह जाता है। 'वह तीसरा' इस उपन्यास में प्रेम की समस्या को व्यक्त किया गया है। 'कोहरे' उपन्यास में नायिका के दामपत्य जीवन की प्रस्तुति हुई है।

मालती जोशी के उपन्यासों संचारिणी, राग विराग, समर्पण का सुख आदि हैं। 'राग विराग' कल्याणी के जीवन का द्वंद है वह गायन का क्षेत्र छोड़कर पति के प्रति समर्पित होती है, परंतु पति की बेरोजगारी तथा ससुराल में होने वाले अत्याचारों से वह अपना मानसिक संतुलन खो देती है। फिर वह अपना जीवन संगीत की सेवा में लगाती है डॉक्टर अमर ज्योति कहते हैं कि "वह गृहस्थी के शोषणपूर्ण वातावरण से निकलकर अपने शेष जीवन को संगीत कला के माध्यम से सार्थक करना चाहती है वह अपने इस प्रयास में सफल होती है अंततः स्वतंत्रता का मार्ग चुनती है और पारिवारिक बंधनों से मुक्त होकर अपना पृथक जीवन जीती है"। (महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि– डॉ. अमर ज्योति, पृष्ठ– 93) 'सहचारिणी' उपन्यास में नायिका नीलिमा वैवाहिक जीवन को समाप्त कर शोषण से मुक्ति पाने की चाह रखती है।

मंजुला भगत के 'अनारों' उपन्यास में घरेलू कामकाज करने वाली नारियों की कथा प्रस्तुत है 'टूटा हुआ इंद्रधनुष' एक त्रिगुणात्मक प्रेम पर आधारित उपन्यास है, यहाँ त्रिगुणात्मक प्रेम की प्रस्तुति नए रूप में प्रस्तुत की गई है।

मृदुला गर्ग अपने उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' में भी त्रिगुणात्मक प्रेम संदर्भ को स्थान देती हैं। 'चितकोबरा' इनका बहुचर्चित उपन्यास है। यह उपन्यास प्रेम के विभिन्न रूपों को उनकी गहराइयों में उद्घाटित करता है।

राजी सेठ का बहुचर्चित उपन्यास 'तत्सम' व्यक्ति के जीवन की चुनौतियों को संतुलित होकर स्वीकारता है यह उपन्यास जीवन के प्रति सार्थक और खुली सोच का परिणाम है। उपन्यास की नायिका वसुधा विधवा है, जो प्रेम संबंधों का विश्लेषण कर पुनर्विवाह करती है। इन्हीं का एक उपन्यास 'निष्कवच' है इसकी नायिका नीरा स्वतंत्र विचारों वाली तथा अपने व्यक्तित्व के प्रति सचेत दिखलाई पड़ती है।

हम यह नहीं कह सकते कि महिला लेखिकाओं ने सिर्फ अर्थ और काम को केंद्र में रखकर रचनाएँ की कुछ महिला रचनाकार इस प्रकार की रही हैं पर कुछ महिला रचनाकार जैसे मन्नू भंडारी, चित्रा मुद्‌गल, कृष्णा अग्निहोत्री, मंजुल भगत मैत्रेयी पुष्पा इस साँचे को तोड़कर लेखन में प्रयासरत रही हैं।

उपर्युक्त विवेचन को ध्यान में रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य जगत में नारी का अविस्मर्णीय योगदान रहा है परंतु नारी का यह योगदान बहुत ही संघर्षपूर्ण और चुनौतीपूर्ण रहा है। उनकी राह आसान नहीं रही है उनकी राह में बहुत सी विचारधाराएं और दुविधाएँ रहीं। परंतु यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि हिंदी साहित्य जगत में महिला रचनाकारों कि जो स्थिति रही उन सब के मूल कारण के रूप में कहीं न कहीं पुरूष वर्ग ही जिम्मेदार रहा है, कभी जानकर और कभी अज्ञानता वश। स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी साहित्य के अंतर्गत महिला रचनाकारों का स्वर बदलता है, वह नारी के भीतर सदियों से दबी नारी मुक्ति की तलाश करती दिखलायी पडती हैं। दरअसल भारतीय महिला रचनाकारों ने पिछले कुछ समय में अनेक बड़े बदलावों का सामना किया है। हिंदी साहित्य के अंतर्गत नारी का योगदान स्वांतरू सुखाय के साथ ही साथ जन हिताय भी है। यद्यपि महिला लेखन आज के युग में भी चुनौती है किंतु आज उसे किसी बैसाखी की जरूरत नहीं। नारी अपने लेखन से अपना मार्ग तलाश रही है और अपनी स्थिति को गंभीरतापूर्वक स्पष्ट कर रही है। नारी को व्यवस्था के अंतर्विरोध से और वर्तमान परिवेश की चुनौतियों से लड़ना है, वह लड़ती भी रही है और अपनी जगह भी बना रही है। आज भारतीय संस्कृति में नारी को शिव तथा शक्ति दोनों मान लिया गया है।

साहित्य जब तक मौखिक परम्परा का हिस्सा था तब तक लेखन में स्त्रियों का योगदान बराबरी के स्तर पर रहा, परन्तु इतिहास के पन्नो में उनका जिक्र भी नहीं किया गया, उन्हें कोई जगह नहीं मिली, अगर नारी

के योगदान का मूल्यांकन साहित्य में करना हो तो वह किसी भी साहित्यगत क्षेत्र में पुरुष से पीछे नहीं है। आज के दौर की महिला साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में महिलाओं की आधुनिक छवि प्रस्तुत कि है। आज नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समकक्ष खडी दिखाई देती है, चाहे वह साहित्य की कोई भी विधा क्यों न हो।

स्त्री–विमर्श की भारतीय पीठिका

विभाषा मिश्र
अतिथि व्याख्याता
हिंदी एवं छत्तीसगढ़ी विभाग
पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय,
रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

हम ऐसे दौर में जी रहे हैं जहाँ चारों तरफ स्त्रियाँ हँसती हुई दिखाई देती हैं–गली में, चौराहों पर, अखबारी विज्ञापनों में और टीवी पर, लेकिन कुछ चेहरे हैं जो कहीं भी दिखाई नहीं देते क्योंकि वे चेहरे नहीं, हाथ हैं–लगातार खटते हुए हाथ! 'स्त्री–विमर्श से जुड़ी हर स्त्री मुख्यतः एक कार्यकर्ता ही है क्योंकि समस्याएँ मिल–बाँटने का सहज घरेलू तरीका ही आज अंतरराष्ट्रीय विस्तार पा गया है। एक सखी तत्व हर स्त्री में नैसर्गिक होता है–विमर्श इसे बस धार ही देता है। एक स्त्री दूसरी की नैसर्गिक सखी तो होती ही है,सब परितप्त जनों और प्रकृति–तक की अनन्य सखा भी वह होती है।'

'स्त्री–विमर्श' का प्रारंभ कब हुआ, इसके संबंध में किसी भी विद्वान का मत सुनिश्चित नहीं है किंतु बीसवीं शताब्दी में कुछ लोग इसका प्रारंभ फ्रांसीसी लेखक 'सिमोन द बुआ' की पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' (1949) के प्रकाशन वर्ष से मानते हैं,और कुछ 'मैरी एलमन' की पुस्तक 'थिंकिंग एबाउट वीमन' (1968) के प्रकाशन वर्ष से। लेकिन अधिकतर विद्वान इस तरह के किसी वर्ग–विशेष को 'स्त्री–विमर्श' का प्रस्थान बिंदु मानना उचित नहीं समझते, क्योंकि बीसवीं शताब्दी में ही इससे पहले भी

स्त्री की अलग पहचान उसके स्वतंत्र अस्तित्व व उसके अधिकारों की समस्याओं को उठाया जाने लगा था।

'स्त्री–विमर्श' वर्तमान समय व समाज के जीवन की वास्तविकताओं व संभावनाओं को तलाशने वाली एक दृष्टि है। कई विद्वानों ने 'स्त्री–पुरुष' को भिन्न–भिन्न साँचों में ढालने की कोशिश भी की है।

डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने कहा भी है– 'लेखक को पुरुष समाज से अलग करके देखना चाहिए, क्योंकि लेखक ने हमेशा हस्तक्षेप किया है।'

समस्त जगत में स्त्री का संघर्ष लगभग समान ही है। फिर चाहे वह भावात्मक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक, भाषिक या फिर उसकी अस्मिता संबंधी समस्याएँ ही क्यों न हो,सभी एक समान ही दृष्टिगोचर होती है। शुरूआत से ही स्त्रियों पर धर्म, जाति, कानून, रीति–रिवाजों के नाम पर बंधन लगाए जाते आ रहे हैं। संभवतः इन्हीं को तोड़ने हेतु ही स्त्री –मुक्ति आंदोलनों की शुरुआत हुई।

आदिकाल से ही 'या देवी सर्वभूतेषु' के मंत्रोच्चारण से स्त्री की पूजा–अर्चना की जाती रही है लेकिन सिर्फ पूजा–अर्चना में ही स्त्री को देवी–स्वरूपा माना गया है, जबकि यथार्थ इसके ठीक विपरीत ही होता चला आया है। जब–जब मान–सम्मान की बात आई तब–तब पुरुष–वर्ग ने इन्हें केवल मन बहलाने की वस्तु मानकर इनकी अवहेलना की है। पांचाली, शव्या या फिर सीता सभी ने कहीं न कहीं अपने स्त्री होने का कर्ज चुकाया ही है। जबकि प्राचीन काल में भी स्त्रियाँ पुरुषों की तरह ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शिक्षा ग्रहण करती थीं तथा सभी कार्यों में निपुण थीं। जैसे याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी एक विख्यात दार्शनिक थी तथा गार्गी महान विदुषी एवं अपने समकालीन पुरुष दार्शनिकों के समकक्ष या उनसे अधिक ज्ञानवती मानी जाती थीं, कौशल्या व तारा दोनों ही मंत्रविद थीं, द्रौपदी पंडिता थीं।

वैदिक युग में स्त्रियों का बड़ा ही पूजनीय स्थान था। पत्नी के बिना आज भी हिदुओं का कोई भी धार्मिक संस्कार पूर्ण नहीं होता। किंतु

वैदिक युग में तो स्त्रियाँ कुलदेवी मानी जाती थीं। विवाह के अवसर पर वधू को आशीर्वाद देने के लिए ऋग्वेद में जो मंत्र है, उसमें वधू से कहा गया है कि सास, ससुर, देवर, ननद की तुम साम्राज्ञी बनो। स्त्रियाँ गृहस्वामिनी तो होती ही थीं, किंतु उनका कर्मक्षेत्र केवल घरों तक ही सीमित नहीं था। खासकर क्षत्रिय–कुल में उत्पन्न स्त्रियों को युद्ध में सारथ्य करने का भी अधिकार प्राप्त था। वे असाधारण विचारिका और पंडिता भी होती थीं। वेद की कितनी ऋचाएँ नारियों द्वारा रची हुई हैं।

एक ओर जहाँ हमारी भारतीय संस्कृति में स्त्रियों को देवी–स्वरूपा, गृहलक्ष्मी, व पूज्या माना जाता है, तो दूसरी ओर उसी के प्रति तिरस्कार, उपेक्षा, तथा हीनभाव रखा जाता रहा है। प्रारंभ से स्त्रियों में सेवा–समर्पण का भाव स्वाभाविक रूप से देखा गया है, किंतु उनके इसी सेवा–समर्पण के भाव को उनकी कमजोरी व अयोग्यता मान लेना भी बिल्कुल गलत है। उदाहरण के लिए शबरी का एक प्रसंग लें।

भगवान राम जब उसके पास पहुँचते हैं, तो वह भाव–विभोर होकर उनका स्वागत करती है, और उनके आने पर आभार मानती हुई कहती है–

'केहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी।
अधम जाति मैं जड़मति भारी।।
अधम ते अधम अधम अति नारी।
तिन्ह मँह में मति मंद अघारी।।'

अर्थात हे पापनाशक प्रभु! मैं आपकी वंदना कैसे करूँ? मैं तो जड़–बुद्धि हूँ, महा–अधम नारियों में भी मंद–बुद्धि की हूँ।

शालीनता व शिष्टाचार अथवा नम्रता एवं भावुकता के नाते यह सब कथन उचित भी है और माननीय भी, किंतु इस कथन को सुनकर राम उसे महानीच मान लें या स्वयं शबरी अपने को इतना निकृष्ट बना ले कि दूसरों को उसे नीच कहने का अवसर मिले, तो यह अनर्थ ही हो गया, उस समय ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि किसी की शालीनता का दुरुपयोग करके

अपने झूठे अहंकार को बढ़ाने की परंपरा से वे पात्र मुक्त थे। शबरी क्या थी? उन्हें पता था।

शबरी के इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि कहीं न कहीं स्त्रियाँ ही स्वयं को हीनभाव से देखती रही हैं तथा उन्होंने अपने स्तर को पुरुष–वर्ग से हमेशा निचले स्तर पर ही रखा, जबकि सत्य यह है कि स्त्रियाँ हर वर्ग, हर क्षेत्र में पुरुष–वर्ग से आगे ही हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी 'रामचरितमानस' प्रारंभ करते हुए भगवान के विराट रूप की वंदना करते हुए लिखते हैं–

'सियाराममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।'

अर्थात इस सारे जगत को श्री सीताराममय जानकर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। इस विश्व को भगवान के रूप में नमस्कार करते हुए उन्होंने केवल 'राम' को ही संबोधन नहीं किया, 'सीता' को भी किया। बल्कि 'सीता' को 'श्रीराम' से पहले संबोधित किया। इससे स्पष्ट है कि भगवान पुरुष व स्त्री दोनों ही रूप में इस विश्व में व्याप्त हैं। यदि प्रधानता दी जाए तो स्त्री–रूप ही दिए जाने योग्य है।

मध्यकालीन अंधकार से निकलकर सुधारवादी युग में संघर्ष करते हुए आधुनिक समय में स्त्री पुरुष की समकक्ष बनकर उभरी है। मानसिक धरातल पर मानवीय होने के कारण वह पुरुष से निम्न स्तर पर कभी नहीं रही। मस्तिष्क उसका उतना ही सूक्ष्म, जटिल तथा विचित्र है, जितना पुरुष का, व्यक्तित्व में स्त्री उतनी ही अद्वितीय है, जितना पुरुष। एक स्त्री ही है, जिसमें सहन–शक्ति, संबल, साहस, सूक्ष्म बुद्धि की अधिकता पाई जाती है। फिर चाहे वह समर्पण हो, चाहे परिवार के कल्याण की बात हो, अपनी बड़ी से बड़ी वस्तु को भी बलिदान देने से नहीं हिचकती। स्त्री की गुणवत्ता ही यह है कि उसे अपने परिवार के सुख से बढ़कर दूसरा सुख प्रिय नहीं लगता।

बदलते हुए परिवेश व बदलती हुई स्त्री और उसके लिए निर्धारित किए गए मानदंडों में बदलाव कहीं न कहीं सामाजिक आंदोलन को जन्म दे रहा है। विभिन्न कथा–लेखकों–लेखिकाओं द्वारा अपनी रचनाओं में समाज, वर्ग व स्त्री की स्वयं की समस्याओं व उनके प्रति किए गए संघर्षों का चित्रण किया गया है।

महादेवी वर्मा ने कहा भी है– 'पुरुष के द्वारा स्त्री का चित्रण अधिक निकट पहुँच सकता है, किंतु यथार्थ के समीप नहीं। पुरुष के लिए नारीत्व का अनुमान है, नारी के लिए अनुभव, अतः अपने जीवन का जैसा चित्रण वह हमें दे सकेगी, वैसा पुरुष बहुत साधना के बाद भी शायद न दे सके।'

साहित्य के क्षेत्र में आज ऐसा समय चल रहा है, जहाँ स्त्रियाँ इतिहास के गर्त से बाहर निकलकर पुरुष द्वारा बोये गए काँटेदार वृक्षों पर चलकर सभी रूढ़िवादी मान्यताओं को दरकिनार कर अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए आगे बढ़ी हैं। स्त्रियों ने खुलकर अपने उत्पीड़न व स्वयं की सोच का विश्लेषण किया है, व पुरुषों पर अपनी निर्भरता को कहीं न कहीं त्याग भी दिया है।

भक्तिकाल में अगर देखा जाए तो, मीराबाई, बैणा बाई, अक्का महादेवी जैसे गिने–चुने नाम ही हमें मिलते हैं। बीसवीं सदी की मुख्य लेखिकाओं में मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्‌गल, सूर्यबाला, नासिरा शर्मा, नमिता सिंह, पद्‌मा सचदेव, राजी सेठ, मधु कांकरिया, मृणाल पांडे, रमणिका गुप्ता, आदि ने अपनी–अपनी रचनाओं के माध्यम से कहीं न कहीं 'स्त्री–विमर्श' अवश्य किया है।

उषा प्रियंवदा ने 'पचपन खंभे, लाल दीवारें' में पुत्री की अहम भूमिका दिखाई है। वहीं कृष्णा सोबती ने 'मित्रो मरजानी' के माध्यम से प्रेम व देह पर स्त्री के अधिकार को बताया है। मृदला गर्ग ने 'मैं ओर मैं' में एक ऐसी स्त्री की अस्मिता की खोज की है, जो कथा–लेखिका भी है।

इसी प्रकार 'कठगुलाब' में उन्होंने पुरुष–प्रधान समाज में स्त्री के शोषण व मुक्ति–संघर्ष की कथा कही है। चित्रा मुद्‌गल ने 'आवाँ' में पुरुष–प्रधान समाज में स्त्री के उत्पीड़न की कहानी बतलाई है। उपन्यास का यह कथन अत्यंत ही उद्वेलित करने वाला प्रतीत होता है–

'मत भूलो, औरत के अस्तित्व का तिलिस्म उसकी देह से ही उपजता है।'

कमल कुमार के उपन्यास 'हैमबर्गर' में भी पंजाब के एक मध्यमवर्गीय परिवार की लड़की की संघर्ष–कथा कही गई है। प्रभा खेतान की 'छिन्नमस्ता' एक ऐसी स्त्री का जीवन–संघर्ष है, जो पुरुष–प्रधान समाज में पुरुषों के वर्चस्व के विरुद्ध अपनी अलग पहचान व जमीन बनाना चाहती है। दीप्ति खंडेलवाल स्त्री मन के विविध स्तरों एवं पर्तों का सूक्ष्म विश्लेषण करने वाली विशिष्ट कथा–लेखिका मानी जाती हैं। मन्नू भंडारी ने भी अपनी कुछ कहानियों में मजदूर–वर्ग की असहाय स्त्रियों की दरिद्रता व संघर्ष का बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

मेहरुन्निसा परवेज भी एक ऐसी ही कथाकार हैं, जिनकी कहानियों में निम्न–मध्यम वर्ग के दुःख–दर्द को शुद्ध मानवीय धरातल पर चित्रित किया गया है। इनमें प्रमुख रूप से महानगरों में खोलियों में रहने वाली स्त्रियों का दुःख–दर्द महानगरीय मध्यम–वर्गीय स्त्रियों की घुटन, रिक्तता व द्वंद्व, तलाकशुदा औरतों की त्रासदी, वर्तमान सामाजिक ढाँचों में मुक्ति चाहती नारी की छटपटाहट आदि अनेक मनः स्थितियाँ देखी जा सकती है।

जया जादवानी के भी तीन कहानी–संग्रह प्रकाशित हैं, जिनमें आधुनिक सभ्य जीवन के खोखलेपन व नारी–जीवन की त्रासदी को पूरी सहानुभूति के साथ व्यक्त किया गया है। सूर्यबाला सधे हुए तीखे असरदार व्यंग्यों की लेखिका हैं, बल्कि उनकी हर कहानी में उसकी सूक्ष्म आभ्यांतरिक के बावजूद इस व्यंग्य का चरपरापन मौजूद होता है। स्थितियों, संबंधों या व्यक्तित्वों की 'आयरनी' को उधेड़ने का उनका अपना ढंग है।

आज से पचास–साठ साल पहले भी साहित्य में सक्रिय स्थिति के स्वर बहुत अधिक नहीं थे, फिर भी सुभद्रा कुमारी चौहान, विद्यावती कोकिल, महादेवी वर्मा, दिनेश नंदिनी डालमिया जैसे कुछ नाम तो थे ही, लेकिन इधर के दौर में सुमित्रा कुमारी सिन्हा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, स्नेहमयी चौधरी, कांता कीर्ति चौधरी आदि के साथ साहित्य की दुनिया में स्त्रियों का दायरा बढ़ा था। आज साहित्य में और अन्य कलाओं में भी स्त्रियों की सक्रियता, दक्षता काफी बढ़ी है। शिवरानी देवी ने कुछ कहानियाँ भी लिखीं तथा 'प्रेमचंद घर में' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी, जिसमें प्रेमचंद का आंतरिक व वाह्य व्यक्तित्व सूक्ष्मता से उभरकर आता है। एक साथ उन सबके नामों को और विशेषताओं को दर्ज करना उतना आसान नहीं हो सकता।

हिंदी में 'स्त्री–विमर्श' के दृष्टिकोण से कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं– 'बाधाओं के बावजूद औरत' (उषा महाजन, 2001), 'स्त्री सरोकार' (आशारानी व्होरा, 2002), 'हम सभ्य औरतें' (मनीषा, 2002), 'स्त्रीत्व–विमर्श' 'समाज और साहित्य' (क्षमा शर्मा, 2002), 'स्वागत है बेटी' (विभा देवसरे, 2002), 'स्त्री घोष' (कुमुद शर्मा, 2002), 'औरत के लिए औरत' (नासिरा शर्मा, 2003), 'खुली खिड़कियाँ' (मैत्रेयी पुष्पा, 2003), 'उपनिवेश में स्त्री' (प्रभा खेतान, 2003), 'हिंदी साहित्य का आधा इतिहास' (सुमन राजे, 2003) आदि।

इसके अलावा बहुत–सी लेखिकाएँ ऐसी भी हैं, जो स्त्रीवादी होने का दावा करती हैं तथा स्त्रीवादी साहित्य का सृजन भी कर रही हैं।

पुरातन काल से अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने वाली स्त्रियाँ अपने भविष्य के लिए निरंतर प्रयासरत हैं। पुरुष–वर्ग की दया–सहानुभूति से परे स्त्रियों ने अपना एक अलग ही साम्राज्य स्थापित कर लिया है। नई सदी में भारतीय समाज की स्त्रियाँ अपने मूल्य–संबंधित मानसिकताओं को निरंतर नई दिशा की ओर आगे बढ़ाने में अग्रसर होती दिखाई दे रही हैं।

प्रत्येक क्षेत्र में अपना वर्चस्व बनाकर चलने वाली स्त्री आज हर जगह खुलापन महसूस करती है।

कभी पुरुष के हाथों की कठपुतली बनने वाली यह स्त्री आज स्वयं पुरुष–वर्ग से किसी भी मायने में पीछे नहीं है। मृणाल पांडे के अनुसार– 'नारीवाद पुरुषों का नहीं, उनकी मानवीयता घटाने वाले उस छ्द्म मुखौटे का प्रतिकार करता रहा है, जो मर्दानगी के नाम पर गढ़ा गया है, और जिसके पीछे झूठी अहमन्यता और उत्पीड़क प्रवृत्ति के अलावा कुछ नहीं है।'

हमें आज भी स्त्री–संबंधी विचारों में सूर, कबीर, तुलसी तथा प्रेमचंद जैसे महान रचनाकारों की रचनाएँ आकर्षित करती हैं। उन्होंने स्त्री–उत्थान से संबंधित जिस प्रकार की रचनाएँ लिखी हैं, वह वर्तमान तथा भविष्य में भी सार्थक सिद्ध होती दिखाई पड़ती है।

अतः यह स्वीकार करने योग्य कथन है कि स्त्री कहीं न कहीं अपने अधिकारों के लिए आगे बढ़ी है। वह किसी भी मायने में पुरुष का विरोध नहीं करती, वरन् पुरुषों में हद से ज्यादा बढ़ती हुई पशुता की सीमा का विरोध करती है। आज राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'स्त्री–विमर्श' के लिए जो भी मुहिम चलायी जा रही है, कहीं न कहीं उसका असर आज की शिक्षित स्त्रियों पर पड़ ही रहा है, जो एक स्वर में कदम से कदम मिलाकर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही हैं व दूसरों को भी इसके लिए प्रोत्साहित कर रही हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अनामिका (2017) – 'स्त्री–विमर्श का लोकपक्ष', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली*
2. *तिवारी, रामचंद्र (2014)– 'हिंदी का गद्य साहित्य', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी*
3. *दिनकर, रामधारी सिंह (2016)– 'संस्कृति के चार अध्याय', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद*

4. *नगेंद्र व हरदयाल (2012)– 'हिंदी साहित्य का इतिहास', मयूर पेपर बैक्स, नोएडा*
5. *पांडे, मृणाल (1998)– 'परिधि पर स्त्री', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली*
6. *वर्मा, महादेवी (1955)– 'श्रृंखला की कड़ियाँ', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली*
7. *वागर्थ (फरवरी 2008)– अंक 151, भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता*
8. *शर्मा, श्रीराम (2013)– रामायण में पारिवारिक आदर्श, युग निर्माण योजना ट्रस्ट, मथुरा*
9. *श्रोत्रिय, प्रभाकर (जनवरी 1999)– समकालीन साहित्य समाचार, किताबघर, नई दिल्ली*

समकालीन हिन्दी साहित्य में नारी की सक्रिय भूमिका

रश्मि गोयल
अध्यक्षा
भूगोल विभाग
शम्भू दयाल पी0 जी0 कॉलेज
गाजियाबाद, उ0प्र0, भारत

सारांश

संपूर्ण मानव जाति के विकास का केंद्र बिंदु नारी है यूं तो मानव समाज में स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक है किसी ना किसी रूप में दोनों ही एक दूसरे पर आश्रित है हमारी मानव जाति की सभ्यता और संस्कृति का यह सुंदर भवन स्त्री और पुरुष के सार्थक और संयमित जीवन संबंध पर ही टिका है सभ्यता का उत्कर्ष इनके समता से भरे जीवन में समाहित है याज्ञवल्क्य मुनि का कथन है – ''जिस तरह चने अथवा सीप का आधा दल दूसरे से मिलकर पूर्ण होता है, उसी प्रकार पुरूष के सामने का खाली आकाश नारी का साथ मिलने से पूर्ण होता है। अतीत में गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, गायत्री, अनुसूया, अरून्धती जैसी तेजस्विनी स्त्रियाँ चिन्तन सम्पन्न थीं। मध्ययुग में मीराबाई, रत्नावली, रानी दुर्गावती जैसी आत्मचेतनायुक्त स्त्रियॉं भी सम्मान की अधिकारिणी हैं किन्तु यह धारा बहुत दूर तक प्रवाहित न हो सकी। उत्तर मध्यकाल तक आते–आते नारी की तेजोमय अन्तःसलिला क्षीण होती गयी और रेगिस्तान में प्रायः लुप्त हो

गयी। किन्तु बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से नारी चेतना फिर से जाग्रत हुई उसमें नए आत्मविश्वास का निर्माण हुआ है। वह स्वावलम्बी एवं स्वयंपूर्ण बनने की ओर अग्रसर हुई है। घर की चारदीवारी को लांघकर बाहर निकल आयी है और जगत के विविध क्षेत्रों में अपनी स्वतन्त्र पहचान बनाती हुई निरन्तर विकास के पथ पर अग्रशील होती हुई पुरूष की सहकर्मिणी के रूप में विद्यमान है। नारी की विकास यात्रा में साहित्य भी अछूता नहीं है। साहित्य में सक्रिय भूमिका के महत्व का प्रतिपादन प्रभा खेतान के इस कथन से लगाया जा सकता है –

''स्त्री के अनुभवों की अभिव्यक्ति कुछ विशेष और अलग रंगों और रेखाओं की पहचान है। कम से कम कुछ तो ऐसा अखोजा रहा है जिसे केवल औरत ही खोज सकती है। कुछ तो ऐसा होगा जो बिल्कुल हम स्त्रियों का निजी सच होगा, हमारा अपना भोगा हुआ, जिया हुआ सच।''

अतः बीसवीं सदी का उत्तरार्ध नारी प्रगति का है। आज नारी ने 'स्त्री–विमर्श' को लेखन का आधार बनाकर एक तरफ नारी सशक्तिकरण व दूसरी तरफ नारी की सामाजिक, पारिवारिक विद्रूप परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है। इसके अलावा नारी साहित्य ने अपने लेखन द्वारा राजनैतिक भ्रष्टाचार का चित्र भी उभारा है। आज नारी ने अपनी दबी हुई दलित भावनाओं की अभिव्यक्ति एवं अपनी अस्मिता को पहचान अपनी लेखनी द्वारा दी है। महिला चेतना को चिन्तनपरक भावात्मक व व्यंग्य शैली में ऊर्जा प्रदान करने वाली लेखिकाओं में प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, स्नेहलता पाठक, उषा बाला इत्यादि ने स्वरों को अभिव्यक्ति दी है।

चित्रा मुद्गल द्वारा लिखित 'आवाँ', (1999) मुम्बई की ट्रेड यूनियनों और मजदूर संगठनों के जीवन संघर्ष को लेकर लिखा गया है। हिन्दी में ट्रेड यूनियन और श्रमिकों पर यह पहला उपन्यास है। चित्रा मुद्गल ने इस उपन्यास के माध्यम से विभिन्न वर्गों की यथास्थिति का सजीव चित्रण किया है। इसके साथ ही श्रमिक महिलाओं की समस्याओं को नए सन्दर्भों में व्यक्त किया है। जिस क्रम में स्वतन्त्रता प्राप्ति के

पश्चात रोजगार एवं श्रम के लिए नारी घर की चहारदिवारी से बाहर आयी है। ठीक उसी क्रम में उसकी समस्याएँ और बढ़ गयी हैं। वह विभिन्न स्तर पर शोषित व उत्पीड़ित हो रही है। चित्रा मुद्गल ने 'आवाँ' में काल्पनिक पात्र 'नमिता पाण्डेय' व 'गौतमी सान्याल' के माध्यम से जीवन के कई वास्तविक पक्षों को खोला है।

यौन शोषण की समस्या

यौन शोषण की समस्या वर्तमान समाज में एक अभिशाप की भाँति फैली हुई है जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक ढॉचा बिखरता जा रहा है। लेखिका ने इस समस्या को कई पात्रों के माध्यम से उजागर किया है। उपन्यास की नायिका 'नमिता' बचपन से ही यौन शोषित होती रही है। उसके मौसा उससे दस साल की उम्र में ही उसके साथ यौनाचार करते हैं। ऐसा आज के वर्तमान युग में सामान्य रूप से देखने को मिल जाता है। लेखिका ने 'नमिता' द्वारा श्रमिक व रोजगारपरक महिलाओं के यौन शोषण की समस्या को भी दर्शाया है। नमिता मजदूर आन्दोलन से जुड़ने के बाद पिता–तुल्य अन्ना साहेब के विकृत यौनाचार के दायरे में भी आती है।

हिंसा की समस्या

लेखिका ने 'आवाँ' के माध्यम से हिंसा के उस रूप से पाठक को परिचित कराया है जो हमारी जननी होती है। नमिता की मॉ की हिंसा का एक उदाहरण – ''क्रोध से बिलबिलाई मॉ ने निर्दयतापूर्वक उसके बालों को मुट्ठी में झपट गाल तड़ातड़ चॉटों से भर दिए।'' चुप्प हरामिन, अलाय–बलाय उगलती कतरनी–सी जवान काबू में रख वरना–छाली–सी–छील गली के कूकुरों को खिला दूँगी।''[1]

दैहिक उत्पीड़न की समस्या

स्त्रियों के प्रति उत्पीड़न की समस्या, समाज के विकास मार्ग में एक चट्टान की भॉति खड़ी हुई है। इस समस्या से अनेक स्त्रियॉ, सुपर्णा एवं स्मिता की मॉ की भॉति परेशान हैं। एक उदाहरण – ''हर रात उसने क्रूर के उन्मादी बूटों –तले माँ को कुटते देखा था। दहलकर वह चीख

उठती। शनैः–शनैः चीखें कण्ठ में जनमते ही घुमड़–घुमड़ कर घुटने लगी। फटी आँखों से वह उत्पीड़न का नंगा नाच देखती रहती।''[2]

मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' (2000) की पृष्ठभूमि में बुलन्देलखण्ड की 'कबूतरा' नामक जनजाति का समाज, जीवन पद्धति, संस्कृति आदि का समावेश है। उस उपन्यास में दो समाजों को चित्रित किया गया है। पहला कबूतरा समाज, दूसरा सभ्य समाज जिसे कबूतरा लोग अपनी भाषा में 'कज्जा' कहते है। लेखिका ने 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास के माध्यम से एक ऐसे समाज को प्रस्तुत किया गया है जो समाज की मुख्यधारा से छिटका हुआ है। ऐसे समाज में स्त्री की स्थिति बड़ी विषम है, ये स्त्रियॉं सभ्य समाज के हाथों की कठपुतलियॉं हैं, ये जैसे चाहे इनका उपभोग करते हैं। जिनके खेतों पर कबूतरा बस्ती बसी होती है, वे लोग इनकी औरतों पर अपना अधिकार समझते हैं। समाज की रक्षक कही जाने वाली पुलिस भी इन महिलाओं की गरीबी और विवशता का फायदा उठाकर इनका शारीरिक शोषण करती हैं। इनकी बस्तियों में पुलिस का हमला होने पर कबूतर खेतों या जंगलों में भाग जाते हैं, लुटती हैं कमजोर कबूतरियॉं।

राजनीतिक अपराधीकरण आज दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है राजनीतिक भ्रष्टाचार की वजह से जनता त्रस्त है, भुखमरी और गरीबी चारों ओर पसरी पड़ी है। राजनीतिक अपराधीकरण पर लेखिका कहती है – 'धन और सत्ता की माया सर्वत्र फैली है। ताकत से तकदीर बने न बने, सत्ता बनती है। सत्ता के बिना पत्ता नहीं हिल सकता।''[3]

लेखिका ने 'अल्मा कबूतरी' के माध्यम से राजनीतिक गन्दगी को नंगा करते हुए दिखाया है। राजनीतिक परिदृश्य की यथार्थ परक अभिव्यक्ति में लेखिका ने युगीन सत्य को बारीकी से उकेरा है। राजनीतिक अपराधीकरण के तहत रात का चोर दिन में साधु बनकर घूमता है। उपन्यास में श्री राम डाकू जो कभी हत्या और डकैतियों के लिए इलाके में प्रसिद्ध था, आज वही श्री राम शास्त्री के नाम से वोट मॉगने के लिए

जनता के बीच है। यथा :– 'अपने चुनाव क्षेत्र में दौरा करने वाले श्री राम शास्त्री अब डाकू की नहीं, नेता की हैसियत से निकलते हैं।''[3]

लेखिका ने 'अल्मा कबूतरी' में 'कबूतरा' जनजाति के माध्यम से वर्तमान में ऐसी अनेक जातियों की सामाजिक स्थिति व विषमता को चित्रित किया है कि जिनके अधिकारों को कुचलकर अपना निर्माण करना सभ्य जातियों का उद्देश्य रहा है। लेखिका ने एक जागरूक लेखिका के रूप में एक आजाद देश की जो आज इक्कीसवीं सदी की वैज्ञानिक उपलब्धि को प्राप्त करने का दम्भ भरता है। उस देश की संकीर्ण मान्यताओं व रूढ़ियों को तार–तार किया है।

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में आजाद भारत की नारी के लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता के द्वार खुलने लगे और उन्हें आत्म–निर्णय का अधिकार मिलने लगा। लेखिका 'प्रभा खेतान' ने अपनी रचनाओं में बीसवीं सदी की आजाद औरत के कथा–प्रसंगों को प्रस्तुत किया है। उत्पादन के साधन पर अपना स्वामित्व कायम करने वाली स्त्री प्रिया, एक छिन्नमस्ता नारी के रूप में दिख पड़ती है। उपन्यास के आरम्भ में – 'प्रिया हवाई यात्रा में सिर–दर्द से परेशान है और अपनी स्मृति में अतीत का पन्ना पलटती है। आर्थिक समृद्धि के पश्चात वह महसूस करती है – छिन्नमस्ता।' जिसका व्यक्तित्व छिन्न–भिन्न है, जो सिर दर्द से परेशान है। पति और पुत्र सहित परिवार से अलग, विखण्डित व्यक्तित्व वाली प्रिया सोचती है – ''क्या औरत की जिन्दगी बस एक सही पुरूष की तलाश भर बनकर रह जाए ?''

व्यंग्य विद्या विसंगतियों के खिलाफ वैचारिक आन्दोलन है। इसके लिए व्यंग्यकार को विसंगतियों की खोज के साथ–साथ चेतना को झकझोर देने वाली शब्दरूपी बारूद पर जबरदस्त अधिकार की आवश्यकता है।

शुरू से माना गया है कि समझदारी और बौद्धिकता का ठेका पुरूषों के पास ही है। पुरूषों की इस मानसिकता ने स्त्रियों को हास्य का आलम्बन बनाया है। ''कई गैर जिम्मेदार कवियों ने जीवन के कठिन यथार्थ

से पलायन करके स्त्री को मनोरंजन के मुहावरे में तबदील कर दिया है जिससे स्त्री जाति के प्रति हमारी घटिया और अश्लील दृष्टि का पता चलता है।''[4]

व्यंग्यकार पुरूष होने के कारण नारी मन को जानने में पूर्णरूप से असमर्थ रहे है। सच ही है अपने मन की बात कोई स्वयं ही कर सकता है अतः व्यंग्य लेखन के क्षेत्र में महिलाओं का आगमन हुआ। नारियों की जागरूकता और उनके चौकन्नेपन का परिणाम है उनका व्यंग्य लिखना। व्यंग्यकार स्नेहलता पाठक ने घरेलू विषय पर व्यंग्य किया है – ''उसके आने के पहले ही मैं दरवाजा खोलकर रखती। उसके बर्तन मांजने के पहले ही जल्दी–जल्दी खुद नहाती, बच्चों को नहलाती। सुबह से पति के पीछे पड़ जाती जल्दी नहा लीजिए नहीं तो महरी चली जाएगी तो दुबारा नहीं आएगी।''[5]

महिलाओं ने व्यंग्य में केवल घर–गृहस्थी के विषय ही नहीं लिए सामाजिक व राजनीतिक विषमता को भी अपनी संवेदना का विषय बनाया है। 'उषा बाला'' का व्यंग्य– ''कानून का हिमायती वकील, जज और पुलिस धरती पे मरने के बाद सीधे स्वर्ग में गए इसलिए स्वर्ग की जायज बात भी कानूनी कार्यवाही की धमकी से नहीं हो पाती – नरकवासियों ने कहा, अजी कानूनी कार्यवाही से कौन डरता है। जब जी चाहे कर लो – पृथ्वी के सारे वकील और जज तो हमारी तरफ हैं। तुम क्या खाक मुकदमा लड़ोगे।''[6]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महिला लेखन ने नारी दुनियाँ को बेहतर बनाने की दिशा में सक्रिय भूमिका निभाई है। आज महिला लेखन ने अपनी प्रतिभा द्वारा बता दिया है कि आज वह समाज व राजनीति के यथार्थ दृष्टिकोण को अपनी कलम द्वारा उकेरने में दक्ष है। आज नारी देवी, दानवी, अबला अथवा रमणी के रूप में न होकर एक मानवी के रूप में है जो यथार्थ को अपनी आँखों से देखती है और सबके

सामने लाने का प्रयास करती है। आज नारी अपने बौनेपन को नकारकर नारी सशक्तिकरण के रूप के उभरकर अपनी सक्रिय भूमिका निभा रही है।

"नारी तेरे रूप की गाथा बड़ी पुरानी,
सुन्दर झरिणी से झरे, कहीं वेगवती तू रानी
आकाश का भेद पा, तूने तारे भी गिन लिए,
समता के अधिकार के, कर्म तूने कर लिए।
नारी तेरे रूप की गाथा बड़ी पुरानी,
चंचल मृगिनी सी भगे, वर्तमान की रानी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1 *नई सदी के उपन्यास, डॉ0 नवीन चन्द्र लोहनी, प्रकाशक– भावना प्रकाशन, पड़पड़ गंज, दिल्ली।*

2 *हिन्दी व्यंग्य साहित्य में नारी, ले0 डॉ0 शैलजा माहेश्वरी, प्रकाशक– विकास प्रकाशन, कानपुर।*

3 *आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, ले0 डॉ0 सौ0 जे0 एम0 देसाई, प्रकाशक– विद्या प्रकाशन, कानपुर।*

4 *समकालीन हिन्दी साहित्य विविध परिप्रेक्ष्य, सम्पादक – डॉ0 एन0 आर0 परमार।*

5 *आधुनिक एवं हिन्दी कथा साहित्य में नारी का बदलता स्वरूप, डॉ0 मुदिता चन्द्रा, सम्पादक – डॉ0 सुलक्षणा टोप्पो।*

6 *उपन्यास 'आवाँ'– पृष्ठ – 342*

7 *उपन्यास 'आवाँ' – पृष्ठ – 323*

8 *उपन्यास – 'अल्मा कबूतरी' पृ0–350*

9 *व्यंग्य– 'नारी व्यंग्यकारों की भूमिका' – पृ0 219*

10 *व्यंग्य– 'द्रौपदी का सफरनामा' पृ0–77 लेखक– स्नेहलता पाठक।*

साहित्य जगत और नारी की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अवलोकन

श्याम नारायण वर्मा
अतिस्टेंट प्रोफेसर
समाजशास्त्र विभाग
महामाया राजकीय महाविद्यालय
श्रावस्ती, उत्तर प्रदेश, भारत

नारी अपने आप में ही साहित्य जगत है, इसमें नारी की भूमिका का प्रश्न ही नही उठता, काश वह प्रारम्भ से स्वतंत्र प्राणी के रूप में जीने को पाती, कहीं न कहीं कुछ प्राकृतिक एवं जैविक मजबूरियों ने उसे कुछ विशेष कार्य करने से रोका, यही प्राकृतिक एवं जैविक मजबूरियों का फायदा पुरुष समाज ने उठाया और उसका बेजा उपयोग सदियों से करता चला आ रहा है। वह चाहे साहित्य लेखन का क्षेत्र हो या फिर कोई अन्य क्षेत्र। स्वतंत्रतापूर्वक साहित्य की रचना की वंचना ने नारी को उसकी मुख्य भूमिका से धकेलकर हाशिये पर जा खड़ा कर दिया। शायद इसीलिए साहित्य जगत में नारी की भूमिका का आकलन करने का प्रयास किया जाने लगा। हजारों पृष्ठ नारी के ऊपर साहित्य जगत श्याह किया जा चुका है। जो पुरुषों की परिकल्पना का भंडार मात्र है नारी चेतना व विचार धारा गायब रही। वास्तव में नारी अगर नारी के ऊपर लिखने को स्व़च्छंदता पायी होती तो आज साहित्य जगत में नारी की भूमिका को लेकर खालीपन महसूस न किया जा रहा होता। निश्चय ही साहित्य जगत में नारी की भूमिका हाशियें पर दिखाई पड़ती है। फिर भी वह साहित्य का केन्द्र बिन्दु रही है उसी के आस–पास अधिकतर साहित्य घुमता नजर आता है भले ही उसको पुरुषों ने अधिक तैयार किया हो और महिलाओं ने

कम, इसलिए नारी अस्तित्व को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से साहित्य जगत में देखा जा सकता है। अतएव उसकी भूमिका से सारा साहित्य जगत अवबोधित रहा है। हां यह जरूर है कि उसके अवदान को उस नजरिये से नही देखा गया जिस नजरिये से देखा जाना चाहिए। उसे वह सम्मान न मिल सका जो उसे पाना चाहिए था।

दुनिया का कोई अंश हो अब वह नारी की भूमिका से अछूता नही रहा क्योंकि सूर्य कोठरी में कैद नहीं रह सकता। उसकी किरणें बरबस अँधेरे को दूर भगा देती हैं। अब नारी की क्षमताएँ, उसकी प्रतिभा घर की चहारदीवारी में कैद न रहेगी। जीवन के हर क्षेत्र में, संसार के हर देश में, विश्व के हर कोने में उसकी प्रतिभा के चमत्कार देखने को मिलेंगे। समय का हर पल उसके विकास की एक नयी किरण बनकर प्रकट होगा। इक्सीसवीं सदी की इस भवितव्यता की आभा अभी के वर्तमान और पिछले कुछ पहले के अतीत में देखी जा सकती है। राजा राम मोहन राय जैसे समाज सुधारकों के प्रयत्नों के फलस्वरूप जहां 1870–80 के बीच प्रथम महिला स्नातक बनी। वही 1882 में प्रथम महिला कानूनी शिक्षा के लिए आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय गयी। इसी शिक्षा की जनजागृति के सूर्योदय के तत्पश्चात स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी महिला सुधारकों में श्रीमती रमाबाई रानाडे, पण्डित रमाबाई, सरलादेवी चौधरी, लेडी अबला बोस, श्रीमती पी.के. रे. आदि प्रमुख रहीं। डॉ. कर्वे जैसी विदेशी विदुषियों ने भारतीय नारी के अभ्युदय की सुबह लाने के अथक प्रयास किये। इनमें थियोसोफिकल सोसायटी की संस्थापक मैडम ब्लावतस्की, श्रीमती एनीबेसेण्ट, सिस्टर निवेदिता एवं मीरा बेन के प्रयासों को ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में नारी को अपना स्थान बनाने में प्रेरणा स्रोत कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी।

भले ही नारी का चरित्र चित्रण पुरुष लेखकों की बपौती समझी जाती रही हो और यही यथार्थ भी है क्योंकि पुरुष लेखकों के लेखन का केन्द्रबिन्दु नारी ही रही है यह अचरज ही है कि नारी जिन्दगी का चित्रण नारी न कर पुरुष के जिम्मे था इसके पीछे का कारण था पुरुषवादी समाज

का होना। इसी मर्दवादी सोच के कारण नारियां साहित्य जगत में अपनी छाप छोड़ने में पीछे रह गयीं। परन्तु इस सोच ने प्रगतिशील नारी लेखकों को ज्यादा दिन तक पीछे नही रखा। वैदिक युग पर अगर निगाह डाली जाये तो स्पष्ट होता है कि साहित्य जगत में नारी का अवदान पुरुषों से कमतर नहीं रहा है। हालांकि बाद के युगों में नारी की स्थिति दयनीय होती चली गयी और वह आज भी किसी न किसी घटना के रूप में मुखरित होती है।

वह आदम की एक अतिरिक्त हड्डी से निर्मित है। अतः मानवता का स्वरूप पुरुष है और पुरुष औरत को औरत के लिए परिभाषित नहीं करता, बल्कि पुरुष से सम्बंधित ही परिभाषित करता है। वह औरत को स्वायत्त व्यक्ति नहीं मानता। यहां तक कहा जाता है कि औरत अपने बारे में नहीं सोच सकती और वही बन सकती है, जैसा पुरुष उसको आदेश देगा। इसका अर्थ यह है कि वह अनिवार्यतः पुरुष के लिए भोग की एक वस्तु है और इसके अलावा कुछ भी नहीं। वह पुरुष के संदर्भ में ही परिभाषित और विभेदित की जाती है। वह आनुषंगिक है, अनिवार्य के बदले नैमित्तिक है, गौण है। पुरुष आत्म है, विषयी है। वह पूर्ण है, जबकि औरत बस अन्या है।"[1]

एंजिल्स ने स्त्री को पुरुष के अधीन होने का विश्लेषण किया इनका जोर मुख्यतः इस विचार का विरोध करना था कि ईश्वर ने स्त्री को कमजोर बनाया है। इन्होनें इतिहास के उदाहरणों द्वारा यह समझने का प्रयत्न किया कि पहले स्त्री समाज की एक स्वतंत्र एवं उत्पादन में समान रूप से भागीदार सदस्य थी और आगे चलकर वह पुरुष के अधीन व पुरुष पर निर्भर पत्नी बन गयी।[2]

साहित्य जगत में नारी और पुरुष लेखन के मध्य किसी भी प्रकार की प्रतिद्वंदिता नहीं थी क्योंकि नारी साहित्य जगत में उतनी मजबूती से अभी खड़ी नहीं थी जितनी होनी चाहिए, वह तो मात्र अपनी अस्मिता की तलाश में लगी हुई थी। जो अपने ऊपर हुए जुल्मों–सितम को अपने

लेखन में बयां भी नहीं कर सकती थी। वह अपनी अनकही कहानी भी शब्दों के माध्यम से भी स्वच्छंद होकर प्रस्तुत नहीं कर सकती थी। वह ऐसा कर भी कैसे सकती थी, एक तरफ उसकी अपनी इज्जत–आबरू का प्रश्न था तो दूसरी ओर पुरुष के रूप में उसके पिता, पति, भाई, बेटे खड़े थे, उन्हें भी बचाना उसी की ही जिम्मेदारी थी क्योंकि वह जिस संवेदना के साथ इन रिश्तों से जुड़ी थी वैसी संवेदना उसके प्रति काश पुरुषों की होती ? उसे साहित्य जगत में अपने लेखन में ऐसी तमाम वर्जनाएं झेलनी पड़ती थी चाहे वह दबाव में झेलती अथवा स्वेच्छा से। क्योंकि हमारा समाज जैसी उम्मीद नारी से करता है वैसी पुरुष से नहीं करता। ऐसे धर्म संकटों के बीच नारी लेखन सदियों तक फंसा रहा है। परन्तु समय का पहिया घूमता है परिस्थितियां प्रतिकूल से अनुकूल होती हैं उसका असर नारी लेखकों पर भी पड़ने लगा है। भारत में आजादी के बाद से नारी साहित्य में, नारी की मनोभावना का प्रकीर्णन, उत्कीर्णन तो तेजी से दिखायी देने लगा है परन्तु अफसोस कि नारी लेखन भी, पुरुष लेखन की भांति नारी समाज के इर्द–गिर्द मडराकर रह जा रहा है। फिर भी आज की तमाम लेखिकाओं के लेखन में नारी समाज ने जो कुछ भी झेला है उसका उत्कीर्णन दिखने लगा है। अपने अनुभवों को अब नारी लेखिकाओं द्वारा जिस तेजी से, बेबाकी से लिखा जाने लगा है। उसमें वास्तविकता का संपुट निश्चय ही अधिक होगा। क्योंकि नारी अस्मिता पर पुरुषों द्वारा लेखन कहीं न कहीं मर्दवादी और नारी के प्रति हेय दृष्टि से ओत–प्रोत रहा है। इस संत्रास से अब नारी समाज बाहर आता दिख रहा है क्योंकि साहित्य के क्षेत्र में उसकी दमदार उपस्थिति ने उसे अब लेखकों की अग्रपंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया है। कवि सम्मेलन हो या फिर सांस्कृतिक क्षेत्र, सभी क्षेत्रों के साहित्य में नारी की भूमिका अपरिहार्य नजर आने लगी है। वास्तव में अपने अनुभवों को स्वयं से बेहतर और कौन लिख सकता है। नारी समाज के साथ भी यही है, अभी तक की रचनाएं जो पुरुष लेखकों, कवियों द्वारा तैयार की जाती थी उसमें नारी या तो एक

भोग्या के रूप में, मनोंरजन के साधन के रूप में, या फिर दिल बहलाने वाले पात्र के रूप में अथवा मजबूर, बेबस, लाचार, विलगित, पराश्रित प्राणी के रूप में साहित्य में परोसी गयी है।[3] इन तमाम समस्याओं के कारण भी साहित्य के क्षेत्र में नारी की भूमिका अपरिहार्य हो गयी थी। जिसकी बयार आजादी के बाद से भारत में तेजी से बहनी प्रारम्भ हुई है।

भारतीय समाज नारी के अस्तित्व बोध की समस्या से अनभिज्ञ रहा हो ऐसा नहीं था। यह दिखावा मात्र था फिर भी विषमता की इन त्रासदी की ओर समाज का ध्यान अपनी ओर मुखातिब करना नारी लेखिकाओं के लिए एक अनिवार्य शर्त भी है, जिम्मेदारी भी है और एक सच्चे साहित्य की पहचान भी यही है कि वह अपना कर्म बखूबी निभाये ऐसे साहित्य की रचना में नारी की भूमिका प्राथमिक हो जाती है साहित्य का दायरा छोटा हो तो क्या बस उसे सच्चाइयों से लबरेज होना चाहिए। उसमें आनुभाविकता का संपुट हो, वह काल्पनिक न हो ताकि वह समाज का सच्चा आइना बन सके और वह तभी बन सकता है जब उसमें अनुभव किये हुए पात्र लेखक के रूप में दुनिया व समाज के सामने आयें। ऐसी दशा में नारी की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।[4]

निष्कर्ष

नारी अपनी जमात में, जो कला और अक्षरों से खेलती है, बहुत कम ऐसी हैं जो टिकी रहने के लिए मेहनत करती हों और यदि इनमें से कुछ टिक भी जाएं तो वे भी निरंतर आत्म–रति, आत्मशक्ति और हीन भाव के अंतर्द्वद्व से ग्रसित रहती हैं अपने आपको और अपने अहं को न भूल पाना स्त्री की ऐसी बड़ी कमजोरी है जो उसके बेहतर भविष्य पर भारी बोझ बनकर पड़ी रहती है। यदि उनकी जरूरत केवल स्वयं की स्वीकृति–भर है, सफलता एक संतोषमात्र है तो वे अपने आपको जगत् के अवलोकनार्थ कभी विलीन नहीं करेंगी, किंतु बिना जगत् में निमज्जित हुए वे जगत् का पुनः सृजन भी तो अपने लेखन में नही कर पायेंगी। नारी समाज को इस सच्चाई को समझकर भी साहित्य के क्षेत्र में अपने को

झोंकना पड़ेगा तभी आपके होने का मतलब होगा अन्यथा भोग्या, अन्या के रूप में आपको हमेशा परिभाषित किया जाता रहेगा है, अतः नारी जब तक "अपने में वर्ग" बनी रहेगी तब तक उसका शोषण बदस्तूर जारी रहेगा, उसे ऐसे शोषण, अपमान के दलदल से बाहर निकलना है तो उसे "अपने लिये में वर्ग" के रूप में परिवर्तित करना होगा। "अपने लिये में वर्ग चेतना" ही नारी को अपने अधिकारों के प्रति, अपनी अस्मिता की रक्षा के प्रति मजबूत प्रहरी के रूप में खड़ा कर पायेंगी अन्यथा नही।

अंत टिप्पणी

1. *स्त्री उपेक्षिता : सीमोन द बोउवार, 2002 हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड।*
2. *सामाजिक विचारक : दोषी एवं जैन : 2005 रावत पब्लिकेशन्स।*
3. *स्त्री उपेक्षिता : सीमोन द बोउवार 2002 हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड।*
4. *सामाजिक सांस्कृतिक मानवशास्त्र : उमा शंकर मिश्र, 1999 पलका प्रकाशन मुखर्जी नगर दिल्ली।*

हिन्दी संस्मरण लेखन में महिला लेखिकाओं का योगदान

विवेक गुप्ता
शोधार्थी
हिंदी विभाग
वर्द्धमान विश्वविद्यालय
पश्चिम बंगाल, भारत

संस्मरण कथेतर गद्य की आकर्षक, आधुनिकतम् एवं महत्त्वपूर्ण विधा है। संवेदनशील कलाकार जब स्वयं की स्मृतियों को शब्दों का रूप देता है, तब संस्मरण साहित्य की सृष्टि होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते अनेक व्यक्तियों के संपर्क में आता है उनके साथ अपने जीवन के कुछ प्रेरणादायक एवं महत्त्वपूर्ण अवधि व्यतीत करता है। संपर्क में आए व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों के जीवन की अनेक घटनाएँ उसे प्रभावित भी करती हैं किंतु कालांतर से सामान्य व्यक्ति उन क्षणों को भूल जाता है, परंतु संवेदनशील कलाकार के मानस पटल पर वह स्मृतियाँ अंकित रह जाती है और जब वह उन प्रेरणादायक, मनोरंजक स्मृतियों को शब्दों का रूप देकर पाठक वर्ग से साझा करता है तब संस्मरण साहित्य का जन्म होता है। अतः यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि संस्मरण में संस्मरणकार अपने भोगे हुए यथार्थ को ही अभिव्यक्त करता है, अपने जीवन से जुड़ी घटनाओं को ही अंकित करता है। चूँकि संस्मरण स्मृति पर आधारित होती है अतः यह स्वाभाविक है कि वह सुखकर होने के साथ-साथ दुःखकर भी होती है। वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को

अभिव्यक्त करना चाहता है, स्वयं के जीवन के महत्त्वपूर्ण एवं प्रेरणादायक क्षणों को सार्वजनिक करना चाहता है, अतः स्वयं की अभिव्यक्ति हेतु वह संस्मरण जैसी महत्त्वपूर्ण, सशक्त और वास्तविकता पर आधारित लघु विधा को आधार बनाता है। समकालीन आलोचक अरुण प्रकाश ने अपनी पुस्तक गद्य की पहचान में लिखा है–"आजकल हिंदी साहित्य में संस्मरणों की बहार है। संस्मरण की बहार यहीं नहीं है। अमेरिका में लेखन-विधा के गुरु हैं विलियम जिंसर।".......उन्होंने संस्मरणों के धुआँधार प्रकाशन पर टिप्पणी की, "यह संस्मरण का युग है। बीसवीं सदी के अंत के पहले कभी भी अमेरिकी धरती पर व्यक्तिगत आख्यान की ऐसी जबरदस्त फसल कभी नहीं हुई थी। हर किसी के पास कहने के लिए एक कथा है और हर कोई कथा कह रहा है।"[1]

हिंदी की महिला लेखिकाओं ने उपन्यास, कहानी, कविता, निबंध, आलोचना जैसी विधाओं को जहाँ अपनी लेखनी से समृद्ध किया वहीं यात्रा-वृतांत, रेखाचित्र और संस्मरण जैसी आधुनिकतम विधाओं में भी अपनी लेखनी का लोहा मनवाया है। छायावादी युग की प्रमुख कवयित्री, आधुनिक युग की मीरा, प्रतिभा की धनी एवं हिंदी की उत्कृष्ट संस्मरण लेखिका महादेवी जी 'अतीत के चलचित्र' (1941) नामक संस्मरणात्मक गद्य लिखकर आजादी से पूर्व हिंदी में महिला लेखिकाओं द्वारा संस्मरण लेखन का चलन प्रारंभ किया। स्वाधीनता के बाद भी महादेवी जी ने संस्मरण लेखन का क्रम जारी रखा और 'स्मृति की रेखाएँ' (1943), 'पथ के साथी' (1956), 'स्मारिका' (1971), 'मेरा परिवार' (1972) जैसी संस्मरणात्मक गद्य–संग्रह लिखकर संस्मरण साहित्य की श्रीवृद्धि की है। महादेवी जी ने केवल साहित्य जगत के लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों पर ही संस्मरण नहीं लिखे बल्कि उन्होंने समाज के दलित, शोषित, उपेक्षित एवं दीन-हीन प्राणियों के साथ-साथ जीव-जंतुओं की व्यथा-कथा का चित्रण भी अपने संस्मरणों में किया है। महादेवी जी ने अपने संस्मरणों में जिन पात्रों को स्थान दिया है अथवा यह कहें कि उन्होंने जिन चरित्रों को अपने संस्मरणों

का विषय बनाया है वे सभी पात्र जीवन के किसी न किसी मोड़ पर उनके संपर्क में आए हैं तथा उन्होंने अपनी संघर्षशीलता, जुझारूपन तथा मानवीय गुणों से महादेवी जी को प्रभावित किया। महादेवी के संस्मरणों को पढ़कर सहृदय पाठक पहले से अधिक संवेदनशील हो जाता है एवं उसमें सामाजिक दायित्व का भाव भी जागृत होता है तथा वह संवेदना के स्तर पर उनके द्वारा सृजित चरित्रों से जुड़ जाता है। उनके द्वारा सृजित अधिकांश चरित्र शोषित, निर्बल एवं असहाय हैं, जो हमारे तथाकथित समाज के अभिन्न अंग है, जिनकी व्यथा-कथा को महादेवी ने अपनी कलम की सियाही से जीवंत किया है। महादेवी ने अपने संस्मरणात्मक गद्य – 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में तत्कालीन स्त्री-पीड़ा, स्त्री-शोषण तथा स्त्री-प्रताड़ना को भी रेखांकित किया है। अतीत के चलचित्र के सभी पात्र समाज के निचले तबके के हैं तथा इन सभी पात्रों में जुझारूपन देखने को मिलता हैं, जुझारूपन ही वह गुण है जो उनके व्यक्तित्व को प्रेरणादायक एवं विशिष्ट बनाता है। महादेवी के संदर्भ में प्रा० राठोड़ बी.बी. की उक्ति द्रष्टव्य है– ''उन्होंने पीड़ित मानवता का प्रतिनिधित्व करके समाज के विभिन्न वर्गों के पुरुष एवं नारी पात्रों की मूक संवेदना को मुखरित करने का प्रयास किया है।''[2] स्पष्ट है कि महादेवी ने अपने संस्मरणों में पात्रों की वेदना, उनके जीवन का अकेलापन, उदासीनता को इतने सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से रेखांकित किया है कि उनके पात्रों की पीड़ा, नैराश्य, उदासीनता से पाठक वर्ग भी जुड़ जाते हैं तथा उनके पात्रों से उन्हें भी सहानुभूति हो जाती है। महादेवी जी संस्मरणों में अपनी तीक्ष्ण स्मरण शक्ति, कल्पना शक्ति एवं शब्दों की तूलिका से किसी चरित्र को इस प्रकार रेखांकित करती है, मानो वह चरित्र अपनी तमाम परिस्थितियों एवं संपूर्ण पृष्ठभूमि के साथ पाठकों के सम्मुख जीवंत हो उठती है। उदाहरण स्वरूप 'अतीत के चलचित्र' में भाभी का जो विवरण प्रस्तुत किया गया है वह मार्का की है– ''छोटे-छोटे मुख की तुलना में कुछ अधिक चौड़ा लगने वाला, पर दो काली रूखी लटों से सीमित ललाट, बचपन और प्रौढ़ता को

एक साथ अपने भीतर बन्द कर लेने का प्रयास-सा करती हुई, लंबी बरौनियोंवाली भारी पलकें और उनकी छाया में डबडबाती हुई सी आँखे, उस छोटे मुख के लिए भी कुछ छोटी सीधी नाक और मानो अपने ऊपर छपी हुई हँसी से विस्मित होकर कुछ खुले रहने वाले ओठ समय के प्रवाह से फीकी भर हो सके हैं, धुल नहीं सके।''[3] उपर्युक्त विवरण पढ़ लेने से पाठकों के सामने भाभी का संपूर्ण व्यक्तित्व जीवंत हो जाता है तथा उनके मन में भी भाभी के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है। यह बात ध्यातव्य है कि भाभी की व्यथा-कथा केवल उनके अकेले की नहीं है, संस्मरणकार ने भाभी के माध्यम से तत्कालीन समाज में बाल विधवा स्त्रियों की सोचनीय दशा को चित्रित करने का प्रयास भी किया है तथा पुरुषतांत्रिक समाज पर करारा व्यंग्य किया है। वर्तमान समय में स्त्रियों की दशा में काफी सुधार हो रहा है अब वे पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर देश और समाज को विकसित करने का प्रयत्न कर रही हैं, किंतु महादेवी के समय में स्त्रियों की दशा काफी दयनीय थी, इस संदर्भ में मुक्तेश्वरनाथ तिवारी की उक्ति द्रष्टव्य है– ''व्यापक रूप में महादेवी के समय में स्त्रियों को घर मिला था, पुरुषों को 'बाहर'।...... पुरुष बाहर रहकर जितना स्वतंत्र था, स्त्री घर के अंदर, पुरुष की अनुपस्थिति में भी स्वतंत्र न थी।''[4]

महादेवी वर्मा ने बिन्दा के माध्यम से विमाता के अत्याचार से पीड़ित बालिका के संघर्ष को दर्शाया है। बिंदा अपनी सौतेली माँ के अत्याचार को सहते-सहते कालकलवित हो गई, बिन्दा की मार्मिक दशा को पढ़कर उसके प्रति सहानुभूति स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है, बिंदा की सौतेली माँ उसके साथ नौकरानी जैसा व्यवहार करती थी, उस नन्ही सी जान पर तरह-तरह के अत्याचार करती थी –''उसका कभी झाड़ू देना, कभी आग जलाना, कभी आँगन के नल से कलसी में पानी लाना, कभी नयी अम्मा को दूध का कटोरा देने जाना, मुझे बाजीगर के तमाशा जैसा लगता था क्योंकि मेरे लिए तो वे सब कार्य असंभव से थे।''[5] महादेवी के संस्मरणों की यह विशेषता है कि वे आज भी उतने ही हृदयस्पर्शी, मार्मिक

एवं प्रासंगिक हैं जितने तत्कालीन समय में थे। उन्होंने अपने संस्मरणों के माध्यम से भारतीय समाज की दारुण दशा या यों कहें कि कुरूपता को चित्रित किया है। महादेवी की सहानुभूति केवल समाज के निचले तबके तक ही परिमित नहीं है बल्कि उनके करुणा का संसार अत्यंत विस्तृत है। उन्होंने अपने संस्मरणों में केवल मानव की पीड़ा को ही चित्रित नहीं किया है बल्कि मानवेत्तर जीवों की पीड़ा को भी वाणी दी है। सोना हिरनी, गिल्लू गिलहरी, गौरा गाय, निक्की नेवला, रोजी कुत्तिया आदि प्राणियों की करुण कथा को अपने संस्मरण का विषय बनाया है। महादेवी का इन मानवेत्तर जीवों से इतना निकटतम संबंध था कि वे उनकी पीड़ा, उनकी व्यथा को गहराई से महसूस किया करती थी तथा उनके स्वभाव से भी वे भली-भाँति परिचित थी। इस संदर्भ में महादेवी की उक्ति द्रष्टव्य है– ''खरगोश बहुत निरीह जीव है। दाँत होने पर भी वह किसी को काटता नहीं, पंजे होने पर भी वह किसी को नोचता-खरोंचता नहीं।''[6] गाय के प्रति भी महादेवी जी का गहरा लगाव था। गौरा गाय के अंतिम क्षणों का वर्णन इन वाक्यों में करती है–''अब मेरी एक इच्छा थी कि मैं उसके अंत समय उपस्थित रह सकूँ। दिन में ही नहीं रात में भी कई-कई बार उठकर मैं उसे देखने जाती रही।''[7] महादेवी वर्मा के उक्त वाक्यों से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि महादेवी जी का मानवेत्तर जीवों के प्रति स्नेह कितना गहरा था।

'स्मृति की रेखाएँ' महादेवी जी की अन्यतम संस्मरणात्मक कृति है, इस संग्रह में कुल सात संस्मरण संग्रहीत है। भक्तिन, चीनी फेरीवाला, जंग बहादुर, मुन्नू, ठकुरी बाबा, बिबिया और गुंगिया आदि उपेक्षित स्त्री-पुरुषों के चरित्रों का चित्रण महादेवी ने अपने स्मृति के आधार पर 'स्मृति की रेखाएँ' में किया है। पथ के साथी में महादेवी ने अपने सान्निध्य में आए साहित्य जगत के प्रसिद्ध सात कवियों के व्यक्तित्व का रेखांकन किया है। प्रस्तुत संग्रह में महादेवी ने जिन सात कवियों का रेखांकन किया है वे हैं – सुश्री कविगुरु रवींद्रनाथ ठाकुर, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सूर्यकांत

त्रिपाठी निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और सियारामशरण गुप्त। बहुमुखी प्रतिभा के धनी निर्भीक स्वभाव वाले निराला के आकर्षक एवं साहसिक व्यक्तित्व का रेखांकन महादेवी ने इन शब्दों में किया है– ''निराला जी विचार से क्रान्तदर्शी और आचरण से क्रान्तिकारी हैं। वे उस झंझा के समान हैं जो हल्की वस्तु के साथ भारी वस्तुओं को भी उड़ा ले जाती है। उस मंद समीर जैसे नहीं जो सुगंध न मिले तो दुर्गंध का भार ही ढोता फिरता है।''[8]

उपर्युक्त उक्ति इस बात का प्रमाण है कि महादेवी ने पैनी दृष्टि एवं निकटता से निराला एवं अपने अन्य प्रवर साथी साहित्यकारों के व्यक्तित्व का अवलोकन किया है, उन्हें जाना और समझा है। उन्होंने अपने साथी साहित्यकारों के व्यक्तित्व के संदर्भ में अपने विचारों को यथावत अंकित करने का प्रयास भी किया है, जिसमें वे सफल भी रहीं हैं।

महादेवी के अलावा कृष्णा सोबती ने 'हम हशमत' लिखकर इस विधा के विकास में योगदान दिया है। हालाँकि तीन भागों में विभक्त इस रचना के लेखन में बहुत अंतराल है किंतु तीनों ही भाग अपने समकालीन साहित्यकारों के जीवन पर लिखे गए हैं। 'सृजन का सुख-दुख' (1981) प्रतिभा अग्रवाल की संस्मरणात्मक कृति है। प्रस्तुत रचना में प्रतिभा जी ने अपने रंगमंचीय अनुभवों को संस्मरण का रूप दिया है।

पद्मा सचदेव ने 'दीवान खाना' (1989), 'मितवा घर' (1995), 'अमराई' नामक तीन संस्मरण संग्रह लिखें। बिंदु अग्रवाल ने 'भारत भूषण अग्रवाल: कुछ यादें कुछ चर्चाएँ' (1989), 'यादें और बातें' (1998), प्रकाशवती पाल ने 'लाहौर से लखनऊ तक' (1994), प्रसिद्ध कथाकार शिवानी ने 'आमादेर शांतिनिकेतन' तथा ज्योत्सना मिलन ने 'स्मृति होते होते' (2010) नामक उल्लेखनीय पुस्तक लिखी। ज्योत्सना मिलन ने अपनी पुस्तक 'स्मृति होते होते' में अज्ञेय, निर्मल वर्मा, राजेंद्र शाह, हिम्मत शाह, नवीनसागर, शैलेश मटियानी, वीरेंद्र कुमार जैन आदि को संस्मरण का विषय बनाया है। प्रोफेसर निर्मला जैन ने 'दिल्ली : शहर दर शहर' (2009)

पुस्तक में दिल्ली के इतिहास व संस्कृति को प्रस्तुत किया है। हिंदी की प्रसिद्ध कथाकार ममता कालिया जी ने 'कितने शहरों में कितनी बार' नामक पुस्तक लिखकर, संस्मरण साहित्य के विकास में तथा उसकी श्रीवृद्धि करने में उल्लेखनीय योगदान दिया है। ममता जी ने मथुरा, दिल्ली, इलाहाबाद, कोलकाता आदि शहरों में बिताए गए अपने जीवन के कुछ मीठी एवं कड़वे अनुभव को पाठकों के साथ साझा किया है ममता कालिया एवं प्रस्तुत पुस्तक के संदर्भ में अखिलेश जी की उक्ति द्रष्टव्य है –''ममता कालिया गद्य लेखन की नई भूमिका में है। वे उन शहरों को याद कर रही हैं जहाँ वह रही, जहाँ की छवियों को कोई हस्ती मिटा नहीं सकी। जाहिर है कि यह महज याद नहीं है, यह है – जीवन्त गद्य द्वारा अपने ही छिपे हुए जीवन की खोज और उसका उत्सव। 'कितनी शहरों में कितनी बार' ने निश्चय ही हिंदी गद्य को समृद्धि, गरिमा और ऊँचाई दी है।''[9]

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य लेखन के प्रारंभ से ही स्त्री लेखिकाओं ने पुरुष लेखकों के समानांतर ही कमोबेश रूप में अपने लेखन के द्वारा साहित्य को समृद्ध करने का कार्य किया है। उपन्यास, कविता, निबंध, नाटक और आलोचना के अलावा अन्य गद्य विधाओं जैसे जीवनी, संस्मरण-रेखाचित्र, यात्रा-वृतांत, डायरी आदि विधाओं में भी स्त्री लेखिकाओं ने लगातार लेखन कार्य किया है, पर विडंबना यह है कि इतिहास ग्रंथों में स्त्री लेखिकाओं को वह स्थान नहीं प्राप्त हुआ जिनकी वह हकदार थीं अर्थात इतिहास ग्रंथों में भी उनका उल्लेख हाशिए पर ही रहा है, यहाँ तक कि हिंदी के दिग्गज आलोचक और 'हिंदी साहित्य का इतिहास' पुस्तक के लेखक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी अपने इतिहास ग्रंथ में स्त्री लेखिकाओं के वैचारिक अवदान को समुचित स्थान नहीं दिया है। महादेवी जी से लेकर कृष्णा सोबती, पद्मासचदेव, प्रकाशवती पाल, शिवानी, निर्मला जैन जैसी अनेक स्त्री लेखिकाओं ने अपनी लेखनी से हिंदी साहित्य को निरंतर समृद्ध से समृद्धतर करने का कार्य किया है। हिंदी की महिला लेखिकाओं के संस्मरण

मानवीय और हृदयस्पर्शी हैं, यही नहीं उनके संस्मरण कथेतर गद्य का नमूना भी पेश करते हैं। महिला संस्मरणकारों को पढ़कर सामाजिक परिवेश के बारे में भी विस्तृत जानकारी मिलती है। अतः हम यह कह सकते हैं कि हिंदी की महिला संस्मरणकारों ने पुरुष संस्मरणकारों के साथ मिलकर अपनी लेखनी से संस्मरण साहित्य को नयी ऊँचाई प्रदान की है, हालाँकि पुरुषसत्तात्मक समाज ने हमेशा स्त्रियों की बौद्धिकता को चुनौती दी है और हर बार उसे पराजय का सामना करना पड़ा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अरुण प्रकाश, गद्य की पहचान, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या –149*
2. *प्रा. राठोड बी.बी., महादेवी वर्मा के रेखाचित्र : एक अध्ययन, अमन प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2011, पृष्ठ संख्या–67.*
3. *महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण 2019 पृष्ठ संख्या 24*
4. *मुक्तेश्वरनाथ तिवारी, महादेवी के साहित्य का गद्य पर्व, अमन प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या– 97*
5. *महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण 2019, पृष्ठ संख्या–32,33*
6. *महादेवी वर्मा, मेरा परिवार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या–54*
7. *वही, पृष्ठ संख्या 68*
8. *पथ के साथी, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2009, पृष्ठ संख्या–58*
9. *ममता कालिया, कितने शहरों में कितनी बार, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2010, किताब के फ्लैप पर अखिलेश की टिप्पणी ।*

हिन्दी उपन्यास लेखन में नारी की भूमिका

अनिता प्रजापत
सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग
डॉ0 भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय
श्रीगंगानगर, राजस्थान, भारत

आज साहित्य की सभी विधाओं में महिलाएँ सफल सृजन कर अपनी रचनात्मक शक्ति का परिचय दे रही हैं। अपने प्रारम्भिक दौर में सीमित दायरे के अनुभवों को व्यक्त करता नारी लेखन आज अत्यंत व्यापक एवं समृद्ध है। आज उसमें भोगे हुए अनुभवों का यथार्थ भी है और सामाजिक प्रतिबद्धता भी। वह अपने परिवेश से जुड़ी चुनौतियाँ स्वीकार कर, व्यवस्था के अन्तर्विरोधों से संघर्ष करता निरन्तर आगे बढ़ रहा है। आज की महिला लेखिका अपने समय व समाज से जुड़े हर प्रश्न व मुद्दे पर बेबाकी से लिख रही है तथा आत्मविश्वास भरा अपना स्वतंत्र चिंतन प्रस्तुत कर रही है।

हिन्दी उपन्यास लेखन के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी की बात करें, तो हिन्दी उपन्यास का इतिहास गवाह है कि महिला उपन्यासकारों ने अपने ज्ञान एवं अनुभव से इस विधा को अत्यंत समृद्ध किया है तथा अपनी कोमल भावनाओं से सजाया सँवारा है। प्रेमचंद युग के पूर्व अनेक लेखिकाओं ने उपन्यास के क्षेत्र में दस्तक देकर अपनी

सृजनात्मकता का परिचय दिया। श्रीमती हरदेवी, प्रियवंदा देवी, कुंती देवी, यशोदा देवी, कुमुद बाला देवी आदि ने अपने उपन्यासों में यद्यपि परम्परागत मूल्यों पर आधारित नारी आदर्शों का ही प्रतिपादन किया, फिर भी हिन्दू समाज में स्त्री की विषम और दयनीय स्थिति का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करने तथा स्त्री शिक्षा का खुलकर समर्थन करने की दृष्टि से इनका योगदान उल्लेखनीय है। प्रेमचंद युग की लेखिकाएँ– रुक्मिणी देवी, विमला देवी, शैल कुमारी, गिरिजा देवी, श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर, प्रभावती भटनागर, उषा देवी मित्रा आदि ने रूढ़ दृष्टिकोण के साथ ही सही पर स्त्रियों की दयनीय स्थिति और समस्याओं पर विचार किया। उषा देवी मित्रा के 'वचन का मोल' उपन्यास में स्त्री की समस्याओं और उलझनों का विश्वसनीय और मनोवैज्ञानिक अंकन हुआ है तथा प्रेम और विवाह की समस्या कुछ अलग अंदाज में प्रस्तुत की गई है। प्रेमचन्दोत्तर युग की उपन्यासकारों ने स्त्रियों से जुड़े मुद्दों– दहेज की समस्या, चारित्रिक सौंदर्य का महत्व, स्त्रियों का अपहरण इत्यादि के साथ–साथ सामाजिक सरोकारों से भी कुछ प्रतिबद्धता दर्शायी है। समाज के शोषित वर्ग की दयनीय स्थिति, पूंजीपतियों की स्वार्थपरता, साधु–सन्यासियों की भ्रष्टाचारग्रस्तता आदि का चित्रण कंचनलता सब्बरवाल के 'मूक प्रश्न', 'भोली भूल' और 'संकल्प' उपन्यासों में हुआ है।

कहने का आशय यह है कि आजादी पूर्व उपन्यास के क्षेत्र में महिलाओं की एक सशक्त पीढ़ी सदियों से भीतर ही भीतर छटपटाती नारी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए उठ खड़ी हुई थी। इनका लेखन भले ही किसी विशेष उपलब्धि तक न पहुँच पाया हो, लेकिन स्त्री समस्या, सामाजिक समस्या पर अपने विचार प्रस्तुत करने, उपन्यास लेखिका के रूप

में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने तथा भावी लेखिकाओं के लिए जमीन तैयार करने की दृष्टि से इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

आजादी के पश्चात् उपन्यास लेखन के क्षेत्र में प्रवेश करने वाली महिलाओं की पीढ़ी ने अपने सार्थक योगदान द्वारा उपन्यास विधा को नया आयाम प्रदान किया। कृष्णा सोबती, शशिप्रभा शास्त्री, मेहरुन्निसा परवेज, शिवानी, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, मृदुला गर्ग आदि ने एक ओर 'स्त्रियों का स्त्रियों के लिए' लेखन कर स्त्री विमर्श की वास्तविक शुरूआत की, तो दूसरी ओर तत्कालीन परिवेश से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर भी अपना स्वतंत्र चिन्तन प्रस्तुत किया। कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' और 'सूरजमुखी अंधेरे के' से स्त्रियों के साहसी लेखन की शुरुआत होती है। 'मित्रो मरजानी' की 'मित्रो' के रूप मे पहली बार परम्परागत नारी संहिता से टकराती, जूझती और उसे ठेंगा दिखाती स्त्री को, उसके विद्रोह को दर्शाया गया है। शशिप्रभा शास्त्री ने अपने अधिकांश उपन्यासों में नारी सम्बन्धी प्रश्नों को ही उठाया है। अपने पहले ही उपन्यास 'अमलतास' में उन्होंने एक अभिजात वर्ग की उपेक्षित–परित्यक्ता स्त्री की कथा प्रस्तुत की है। मेहरुन्निसा परवेज ने 'आँखों की दहलीज' और 'कोरजा' नामक उपन्यासों में मुस्लिम समाज की तथा 'उसका घर' में ईसाई परिवार की प्रामाणिक तस्वीर प्रस्तुत करते हुए दोनों समाजों में पुरुष द्वारा नारी शोषण के विभिन्न रूपों को गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। ममता कालिया का 'बेघर' उपन्यास नारी संहिता के एक बड़े क्रूर विरोधाभास का चित्रण करता है। यौन शुचिता, कौमार्य और केवल पति से यौन सम्बन्ध जैसे नारी संहिता के नियम एवं कथा की पात्र संजीवनी का विवाह पूर्व कौमार्य परीक्षण की कसौटी पर खरा न उतरना व परिणामस्वरूप सम्पूर्ण जीवन एक त्रासदी बनकर रह जाना आदि का यथार्थ वर्णन इस उपन्यास में हुआ

है। मृदुला गर्ग ने लगभग सभी उपन्यासों में आधुनिक नारी की जटिल मानसिकता और अस्मिता का संघर्ष दर्शाया है। 'उसके हिस्से की धूप' में परम्परागत मूल्यों को नकारती हुई, आधुनिक स्त्री के प्रेम का त्रिकोणात्मक संघर्ष बिल्कुल नये रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'कठगुलाब' नामक उपन्यास में लेखिका ने 'नारी मुक्ति की सही दिशा' का प्रश्न प्रौढ़ चिंतन और संवेदना के साथ उठाया है। मंजुल भगत ने अपने उपन्यास 'टूटा हुआ इन्द्रधनुष' में परम्परागत नारी संहिता को अस्वीकार कर नारीवाद का नया स्वर प्रस्तुत किया है, तो 'लेडीज क्लब' में महानगरों की अभिजातवर्गीय स्त्रियों की खोखली जिन्दगी के अन्तर्विरोधों को उजागर करने का प्रयास किया है। 'अनारो', 'गंजी' और 'बेगाने घर में' नामक उपन्यासों में लेखिका ने शहरी निम्नवर्गीय स्त्रियों की जिन्दगी का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण प्रगतिशील दृष्टिकोण के साथ किया है।

महिला लेखन ने समय के साथ विकास यात्रा करते हुए, अपने अनुभव संसार को बढ़ाते हुए कथ्य और शिल्प में उत्तरोतर प्रगति और प्रौढ़ता प्राप्त की है। चूंकि स्त्री जीवन का यथार्थ उनका भोगा हुआ यथार्थ है और भोगे हुए यथार्थ को लिखना, ओढ़े हुए यथार्थ को लिखने से बेहतर है। इसलिए आगे के दशकों में भी स्त्री जीवन की समस्याएँ, पीड़ाएँ, संघर्ष और चुनौतियाँ ही इन उपन्यासकारों में से अधिकांश की रचनाओं के केन्द्र में रही। चन्द्रकांता, राजी सेठ, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, गीतांजलि श्री, अलका सरावगी प्रभृति लेखिकाओं ने स्त्री लेखन के क्षेत्र में नए युग के साथ नई संभावनाओं की तलाश करते हुए अपनी अद्भुत रचनाशीलता का परिचय दिया। चन्द्रकान्ता के उपन्यास 'अर्थान्तर' और 'अपने–अपने कोणार्क' स्त्री की भटकन और एकाकीपन को गहरी संवेदना के साथ व्यक्त करते हैं। 'बाकी सब खैरियत है' में लेखिका

ने पारिवारिक सम्बन्धों के परिवर्तित हो जाने का वर्णन किया है। राजी सेठ ने 'तत्–सम' उपन्यास में आधुनिक नारी के पुनर्विवाह की समस्या को मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। उपन्यास की प्रमुख पात्र अपने पति की मृत्यु के बाद किसी और के साथ जुड़ने के निश्चय तक पहुँचने में जिस मानसिक संघर्ष और संवेदनात्मक उद्वेलन से गुजरती है, उसका बड़ा प्रभावोत्पादक अंकन लेखिका ने किया है। नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्री की नियति और उसके संघर्ष को व्यापक फलक पर परिभाषित करने का प्रयास किया है। उनके 'शाल्मली' और 'ठीकरे की मँगनी' नामक उपन्यास आधुनिक भारतीय नारी की स्थिति पर आधारित हैं। 'शाल्मली' में जहाँ हिन्दू–परिवार में पति–पत्नी की समस्या का, समस्त संवैधानिक अधिकारों के बावजूद स्त्री के पारिवारिक और सामाजिक शोषण की शिकार होने का अंकन है, तो 'ठीकरे की मँगनी' में मुस्लिम समाज में स्त्री की स्थिति और रूढ़ियों से भरे माहौल की घुटन से निकलकर अपनी पहचान बनाने की चेतना को उभारा गया है। प्रभा खेतान के उपन्यासों के चिन्तन और संवेदना के केन्द्र में मुख्यतः स्त्री ही रही है और उन्होंने स्त्री की नियति और उसके जीवन के विविध पहलुओं को गहरी संवेदनशीलता के साथ व्यक्त किया है। 'आओ पेपे घर चलें' विश्व सन्दर्भ में नारी की नियति को पहचानने और उद्घाटित करने का सर्जनात्मक प्रयास है। अमरीकी औरत के जीवन के भयानक सच को प्रस्तुत करने वाले इस उपन्यास में भोग विलास में डूबी अमरीकी औरत के भीतरी अकेलेपन, असहाय स्थिति और पीड़ा को चित्रित किया गया है। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में एक ओर आधुनिक नारी की त्रासदी का चित्रण है तो दूसरी ओर उसे दृढ़ संकल्प के साथ अपना अधिकार हासिल करने के लिए, अपना भाग्य निर्मित करने के लिए संघर्ष की राह पर अग्रसर भी दिखाया है। मैत्रेयी

पुष्पा ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश में उभरती नयी नारी चेतना को चित्रित किया है। उनके 'इदन्नमम' उपन्यास की जुझारू युवती मंदाकिनी परिवार और समाज द्वारा स्त्री के लिए निर्मित बंधनों को तोड़कर, नेताओं और माफिया ठेकेदारों द्वारा आदिवासियों, ग्रामीणों के शोषण के विरूद्ध तनकर खड़ी हो जाती है। 'चाक' मे पुरुष सत्ता को चुनौती देती, नैतिक संहिताओं की रूढ़ियों की जकड़न को तोड़ती स्त्री की हिम्मत और दृढ़ता से अन्याय से लड़ने के लिए कदम बढ़ाने का चित्रण हुआ है। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में लेखिका ने कबूतरा जाति की स्त्री अल्मा का शोषण के विरूद्ध संघर्ष व विद्रोह दर्शाया है, जहाँ वह सभ्य समाज से उनकी ज्यादतियों के विरोध में दृढ़ता से टक्कर लेती है। चित्रा मुद्गल ने अपने उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में बम्बई के महानगरीय परिवेश में विज्ञापन जगत के ग्लैमर, मूल्यहीन प्रतियोगिता, तिकड़म, देह व्यापार के बीच नारी विमर्श को प्रस्तुत कर दर्शाया है कि इस परिवेश में स्त्री चाहे कितनी भी योग्य हो, उसे भोग्य वस्तु के रूप में देखा जाता है।

स्त्री एवं परिवार से जुड़े प्रश्नों से ये महिला उपन्यासकार हालांकि अपेक्षाकृत रूप से अधिक जूझती रही हैं फिर भी समय एवं समाज से जुड़े अन्य विषयों पर भी गहन चिन्तन प्रस्तुत कर अपनी सजगता एवं सामाजिक उत्तरदायित्व का परिचय दिया है। कृष्णा सोबती का 'जिन्दगीनामा' उपन्यास पंजाब के किसानों—ग्रामीणों के जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। 'दिलोदानिश' में मध्यकालीन सामन्ती परिवेश से जुड़ी संवेदनाओं, तकलीफों, उलझन भरी मनः स्थितियों, मनोभावों के मार्मिक अंकन के साथ हिन्दू—मुस्लिम सम्पर्क से निर्मित दिल्ली की मूल संस्कृति की विश्वसनीय झांकी प्रस्तुत की गई है। मृदुला गर्ग ने 'खातुल' उपन्यास में अफगान शरणार्थियों की जिन्दगी को प्रस्तुत किया है तो

नासिरा शर्मा ने 'सात नदियाँ एक समन्दर' उपन्यास में ईरान के राजनीतिक–सांस्कृतिक संकट को एक मानवीय संकट के रूप में देखते हुए एक संवेदनशील रचनाकार के रूप में इस धार्मिक उन्माद के विरूद्ध आवाज उठाई है। चन्द्रकान्ता के उपन्यास 'ऐलान गली जिन्दा है' और 'यहाँ वितस्ता बहती है' कश्मीर की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। मृणाल पाण्डेय ने अपने उपन्यास 'पटरंग पुराण' में पटरंगपुर नामक गाँव को केन्द्र बनाकर कुमायुँ–गढ़वाल के पहाड़ी क्षेत्र के जीवन में आये बदलाव का मार्मिक चित्रण किया है।

शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यास 'मीनारें' में शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार, गुंडागर्दी, राजनीतिक हस्तक्षेप आदि का यथार्थ चित्रण हुआ है। ममता कालिया ने अपने 'नरक दर नरक' उपन्यास में तत्कालीन समाज–व्यवस्था का चित्र प्रस्तुत करते हुए शिक्षित बेरोजगारी, शिक्षकों–अधिकारियों की गुटबंदी, भ्रष्टाचार, व्यवस्था के प्रति छात्रों का असंतोष, अध्यापकों की घुटनभरी जिन्दगी आदि का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया है। सूर्यबाला के उपन्यास 'जूझ' में परिसर जीवन की सच्चाई, शैक्षिक जीवन की विसंगतियों, व्यवसायीकरण, अवमूल्यन आदि को विषय बनाया गया है।

कृष्णा सोबती के 'समय सरगम' उपन्यास में महानगरवासी उच्च मध्यम–वर्गीय वृद्ध व्यक्तियों की जीवन स्थितियों से जुड़ी समाजशास्त्रीय समस्या को उठाकर वरिष्ठ नागरिकों की प्रामाणिक और मार्मिक कहानी प्रस्तुत की गयी है। आगे चलकर चित्रा मुद्‌गल के 'गिलिगडु' उपन्यास में भी वृद्धावस्था की त्रासद नियति को कथ्य बनाया गया। 'दो वृद्धों की कथा' के माध्यम से लेखिका ने भूमंडलीय संस्कृति में केवल धन का महत्व रह जाने, रिश्तों–नातों की उष्मा खत्म हो जाने, वृद्धावस्था के त्रास, बेटा–बहू द्वारा दिये जाने वाले बेगानेपन, अपनों के द्वारा दिये जाने वाले दंश, वृद्धों

की सम्पत्ति पर बेटे–बहू की गिद्ध दृष्टि आदि की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में, बदले हुए स्त्री–पुरूष सम्बन्ध के परिप्रेक्ष्य में सम्बन्ध विच्छेद की त्रासदी को बच्चे की दृष्टि से प्रस्तुत करता है। दाम्पत्य सम्बन्ध का विघटन और नये सिरे से, नये सम्बन्ध बनाकर जीने का आग्रह और जिसके कारण बाल संतान की अनचाहे अस्तित्व में परिणति, एक तरफ संतान के प्रति संवेदनशीलता तो दूसरी तरफ नये सम्बन्ध की मांग और इससे उपजा तनाव– इन सबका प्रामाणिक अंकन 'आपका बंटी' में हुआ है।

आधुनिक समाज के जटिल संदर्भों से गहरी संवेदना के साथ टकराती इन महिलाओं ने भारतीय राजनीति, भारत विभाजन, भ्रष्टाचार इत्यादि ऐसे अनेक विषयों का चुनाव कर, महिला लेखन की परम्परागत छवि को ध्वस्त किया है। समकालीन राजनीतिक परिवेश से सम्बद्ध उपन्यास 'महाभोज' की रचना कर मन्नू भंडारी ने महिला लेखकों के लिए एक प्रकार से अछूते रहे विषय क्षेत्र में प्रवेश किया। राजनीति में प्रविष्ट मूल्यहीनता, शैतानियत और नैतिक सड़ाँध का अत्यन्त यथार्थ और सजीव चित्र इसमें प्रस्तुत किया गया है। लेखिका ने दा साहब, सुकुल जी, पांडेय जी, अप्पा साहब आदि पात्र, जो तरह–तरह के मुखौटे लगाये सत्ता की लड़ाई लड़ने वाले राजनेताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं– के माध्यम से समकालीन राजनीति के घिनौने चेहरे को बेनकाब करने में अद्‌भुत सफलता प्राप्त की है। मृदुला गर्ग ने भी अपने उपन्यास 'अनित्य' में भारतीय राजनीति और स्वतंत्रता संग्राम को कथ्य बनाया है। नासिरा शर्मा का उपन्यास 'जिन्दा मुहावरे' भारत–विभाजन की त्रासदी को आधार बनाकर लिखा गया है, जिसमें लेखिका ने विभाजन के बाद भारत में रह गए और पाकिस्तान चले गए दोनों तरह के मुसलमानों के दर्द को बहुत

सहानुभूति और गहरी संवेदना के साथ चित्रित किया है। मृणाल पांडेय ने 'रास्तों पर भटकते हुए' उपन्यास में आधुनिक उपभोक्तावादी समाज में मानवीय सम्बन्धों की मृत्यु, भ्रष्टाचार आदि का यथार्थ अंकन किया है।

प्रभा खेतान का 'पीली आँधी' उपन्यास राजस्थान के मारवाड़ी समाज की व्यथा–कथा प्रस्तुत करने वाला संभवतः पहला उपन्यास है। इसमें लेखिका ने मारवाड़ी समाज के संघर्ष और पीड़ा को गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। ये मारवाड़ी राजस्थान में प्रकृति की मार और सामन्ती शोषण की विभीषिका से बचने के लिए बंगाल, बिहार आदि स्थानों पर पहुँचकर, अपनी जमीन से कट जाने का दुःख सहन कर, अपने परिश्रम और बुद्धि से सम्पन्न बनने में सफल हुए। लेखिका ने मारवाड़ियों की शान–शौकत के पीछे छिपे संघर्ष के साथ–साथ उनके जीवन के अन्तर्विरोधों को भी प्रस्तुत किया है। प्रभा खेतान के 'आओ पेपे घर चलें' उपन्यास में अमरीकी औरत के जीवन की विसंगतियों के साथ वहाँ के जीवन संघर्ष, यांत्रिकता, सम्बन्धों के व्यवसायीकरण, भोगवादी मानसिकता आदि का विश्वसनीय अंकन हुआ है। 'तालाबंदी' नामक उपन्यास में लेखिका ने निजी प्रबन्ध और मजदूरों के परस्पर विरोधी हितों के टकराव और इससे उत्पन्न तनाव का यथार्थ चित्रण किया है तथा मजदूरों के प्रति अपनी सहानुभूति दर्शायी है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने सभी उपन्यासों में बुंदेलखंड के परिवेश और ग्रामीण समाज को पूरे यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है। अलका सरावगी के उपन्यास 'कलिकथा वाया बाइपास' के अत्यंत व्यापक और वैविध्यपूर्ण कथ्य में मारवाड़ी परिवार की पांच पीढ़ियों की संघर्ष कथा के बीच में प्लासी युद्ध में अंग्रेजों का साथ देने वाले अमीचंद से लेकर बाबरी ढांचा विध्वंस तक की कथा, लालू राबड़ी, सोनिया और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों तक के प्रसंग तथा मुख्य पात्र रामकिशोर बाबू

की विक्षिप्तता जन्य फैंटेसी के रूप में इक्कीसवीं सदी में पर्यावरण प्रदूषण और उसके भयंकर परिणामों तक की चर्चा की गई है।

हिन्दी उपन्यास लेखन में सक्रिय इन महिलाओं ने देश और समाज के बदलते हुए जीवन यथार्थ को उसके पूरे विस्तार और वैविध्य में गहरी संवेदनशीलता के साथ व्यक्त किया है। उनके लेखन में उत्तरोत्तर प्रौढ़ता, सटीकता तथा अनुभव व संवेदना की गहराई आती गई है। आज 21वीं सदी में आकर स्त्री लेखन और अधिक धारदार तथा कथ्य एवं प्रस्तुति में व्यापक हो गया है। चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी, रजनी गुप्त, ममता कालिया, जयन्ती, मृदुला गर्ग, कमल कुमार आदि लेखिकाओं ने समकालीन यथार्थ के विभिन्न पक्षों पर अपनी कलम चलाई है तथा समसामयिक संदर्भों का बहुत ही प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया है। नई सदी की ये कथाकार एक पूरी वैचारिक पृष्ठभूमि और तैयारी के साथ उपन्यास लेखन में प्रवृत्त हुई है। एक ओर इन्होंने स्त्री प्रश्नों पर अधिक सजगता से विचार किया है तो दूसरी ओर सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक–सांस्कृतिक परिवेश से जुड़े प्रश्नों पर सूक्ष्म एवं गहन चिन्तन प्रस्तुत किया है।

नई सदी के नये उपन्यासों में कहीं विवाह संस्था को पुनर्परिभाषित किया गया है तो कहीं स्त्री–पुरुष सम्बन्ध के समस्त पक्षों को नई दृष्टि से विश्लेषित किया गया है। अलका सरावगी के उपन्यास 'शेष कादम्बरी' में एक नारी की वेदना का चित्रण है जो विवाह सूत्र में बँधकर पति के प्रत्येक अनुचित को सहने के लिए अभिशप्त है तथा साथ ही लेखिका ने उपन्यास के अन्त तक पहुँचते उस नारी को इतना दबंग भी दिखा दिया है कि वह अपने छली पति को सबक सिखा देना चाहती है, कोर्ट में घसीटना चाहती है, अपने अत्याचारी पति को माफ न कर, उससे

प्रतिशोध लेना चाहती है। यह है नई नारी चेतना, जिसका चित्रण लेखिका ने किया है। लता शर्मा ने 'सही नाप के जूते' उपन्यास में भूमण्डलीय समाज में आधुनिक नारी की नियति– बिकाऊ स्थिति– का चित्रण किया है तथा इन सबसे अलग रहने का मार्ग भी प्रशस्त किया है। मैत्रेयी पुष्पा का 'त्रिया हठ' उपन्यास एक विधवा स्त्री की इच्छाओं–कामनाओं को अभिव्यक्ति देता है। रजनी गुप्त के 'एक न एक दिन' उपन्यास में प्रथम बार अत्यन्त उच्च पदस्थ, अच्छा कमाती, अच्छा सामाजिक जीवन जीती स्त्री की बेचारगी, दाम्पत्य सम्बन्ध में आई घरेलू हिंसा का अत्यन्त गहरी संवेदना के साथ चित्रण हुआ है। आज की नारी इन स्थितियों पर मूक बनी नहीं रह सकती, उसके मन में बार–बार प्रश्न उठते हैं कि आखिर किसने थमाए एक व्यक्ति के हाथों में इतने अधिकार ? क्यों ये व्यवस्था हमेशा औरत पर ही छींटाकशी के मौके ढूँढती रहती है? सात फेरे लेने से क्यूंकर एक पुरुष किसी स्त्री का सर्वांग मालिक बन जायेगा? उपन्यास की पात्र ऐसे प्रश्नों से बार–बार टकराती है और चुनौती पूर्ण स्वर में इन प्रश्नों के जवाब माँगती है।

ममता कालिया का 'दुक्खम–सुक्खम' उपन्यास ब्रज क्षेत्र की कथा के माध्यम से उत्तर भारत की कस्बाई–संस्कृति को पुनर्जीवित करता है तथा बीसवीं शती के प्रायः मध्य से चलकर इक्कीसवीं शती के प्रथम दशक तक के समय का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करता है। समस्त आधुनिकता के बावजूद स्त्री की भारतीय परिवार व्यवस्था में दुर्गति, राष्ट्रीय–स्वतंत्रता संग्राम में गाँव–समाज– विशेषतः स्त्रियों की भागीदारी, स्वाधीनता के पश्चात् शरणार्थी समस्या, 21वीं शती में वैश्वीकरण के बढ़ते चरण आदि को भी ममता कालिया ने चित्रित किया है। जयन्ती का उपन्यास 'खानाबदोश ख्वाहिशें' वैश्विक गाँव की संस्कृति में ढली नये युग

की नई नारी की चुनौतियों, जीवन संघर्ष, नई जीवन–शैली, नई पीढ़ी की भटकन के बीच स्त्रीत्व की तलाश आदि पर गम्भीर विमर्श प्रस्तुत करता है। अलका सरावगी का 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास पूरी तरह से भूमंडलीय आर्थिकता, नवउदारवाद, उपभोक्तावाद तथा बाजारवाद के विज्ञापन परिचालित मायाजाल पर केन्द्रित है। नववैश्विक-पूंजी और बाजारवाद के कारण अमीरों और गरीबों के बीच बढ़ती खाई, भौतिक दृष्टि से सम्पन्नता और आत्मिक दृष्टि से विपन्नता, विज्ञापन का जादू, मार्केटिंग की बहार, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की तिकड़में आदि से यह उपन्यास रूबरू करवाता है तथा पाठक के संवेदन तंत्र और सोच को जगाने का प्रयास करता है। मृदुला गर्ग का 'मिलजुल मन' तथा कमल कुमार का 'पासवर्ड' उपन्यास औपन्यासिक ढाँचे में एक नया प्रयोग करते हुए– आत्मवृत्त और उपन्यास – दोनों विधाओं में आवाजाही करते हैं। 'मिलजुल मन' में लेखिका की जीवन कथा, बहन मंजुल भगत की उपस्थिति के साथ अपने समय के समाज और राजनीति के यथार्थ को भी चित्रित किया गया है। 'पासवर्ड' एक प्रेमकथा है जो ई–मेल की नई तकनीक का इस्तेमाल करते हुए आदि से अन्त तक एक स्वगत कथन से में चलती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करती इन महिला लेखिकाओं का हिन्दी उपन्यास लेखन में महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय योगदान रहा है। एक ओर इन उपन्यासकारों ने पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था में युगों–युगों से कष्ट एवं पीड़ा भोगती, मुक्ति के लिए छटपटाती और फिर संघर्ष के लिए उठ खड़ी होती और पुरुष सत्ता को चुनौती देती, परम्परागत परिवार और दाम्पत्य संहिता को नकारती, स्त्री–पुरुष सम्बन्ध को नये सिरे से बुनती नारी के क्रमिक परिवर्तित स्वरूप का विश्वसनीय चित्रण किया है, उसके मानसिक उद्वेलन को अभिव्यक्ति दी

है। दूसरी ओर समकालीन संदर्भों की तह तक पहुँचकर गम्भीर चिंतन भी प्रस्तुत किया है। समकालीन राजनीति, भारत–विभाजन, शरणार्थी समस्या, वृद्धावस्था की पीड़ा, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, किसानों–मजदूरों की समस्या, भूमण्डलीय उपभोक्तावाद और बाजारवाद का बढ़ता प्रभाव और अपसंस्कृति आदि अनेक समसामयिक विषयों पर एक नई दृष्टि और सोच के साथ इन उपन्यासों में विचार किया गया है। आज स्त्री लेखन किसी भी दृष्टि से पुरुष लेखन से कमतर नहीं है। भले ही महिलाएँ अपेक्षाकृत रूप से पुरुषों के पश्चात् इस क्षेत्र में सक्रिय हुई, भले ही उन्होंने स्त्री एवं परिवार की समस्या से इतर विषयों पर कुछ बाद में सोचना प्रारम्भ किया, लेकिन आज वह कथ्य एवं शिल्प की प्रौढ़ता और विविधता से स्वयं को प्रमाणित कर चुकी है और निरन्तर प्रगति की राह पर अग्रसर है। उपन्यास साहित्य के सागर में भावुक मन की संवेदनाओं को मिलाकर उसे परिपूर्ण और समृद्ध बनाने में महिला उपन्यासकारों का विशेष योगदान है।

हिन्दी साहित्य में नारी–विमर्श

संगीता
सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, झुन्झूनूँ,
राजस्थान, भारत

प्रस्तावना

मानव सृष्टि के आरम्भ से ही सृष्टि के निर्माण व संचालन में नारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। नारी को मानव सभ्यता एवं संस्कृति का मूल आधार माना जाता है। स्त्री–पुरूष दोनो ही गाड़ी के दो पहियों की भांति सृष्टि के विकास में बराबर के भागीदार है। समाज के दो पहलू स्त्री–पुरूष एक दूसरों के पूरक है। किसी एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व नहीं है। भारतीय समाज और साहित्य में एक समय ऐसा था जब स्त्री को समाज में सम्मानजनक अधिकार प्राप्त था। नारी के लिए 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवता' कहा जाता था। स्त्री–पुरूष दोनों को बराबर के अधिकार प्राप्त थे। परन्तु मध्यकाल तक आते–आते नारी की इस स्थिति में परिवर्तन आने लगा। अनेक कारणों से धीरे–धीरे नारी के अधिकारों का ह्रास होता गया। शिक्षा जैसे मूलभूत अधिकार से उसे वंचित रखा जाने लगा। नारी की सार्वजनिक जीवन में भाग लेने की स्वतंत्रता सीमित होती गई। इन सबके परिणामस्वरूप हिन्दू समाज में नारी का गौरव

घटता गया। नारी को मात्र भोग और विलास की वस्तु समझा जाने लगा। समाज की पुरूष प्रधान व्यवस्था ने स्वयं को बंधनों से मुक्त रखकर नारी को अनेक बंधनों में जकड़कर रखा। अतः इन सभी बंधनों से मुक्ति प्राप्त करने का प्रयास नारी ने किया। नारी के इस मुक्ति के प्रयास में साहित्य ने उसका पुरजोर साथ दिया। क्योंकि नारियों की अवस्था को सुधारे बिना जगत के कल्याण की कोई संभावना नहीं है। प्रत्येक राष्ट्र में स्त्री–पुरूष किसी एक आदर्श को व्यक्त करते हैं। उक्त दोनो को समान अधिकार देना आवश्यक है।

रविन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार – ''मानव सृष्टि में नारी का अविर्भाव बहुत प्राचीन है। मनुष्य समाज में नारी शक्ति को आद्या शक्ति कहा जाता है। यही वह शक्ति है जो जीव लोक में प्राणों का वहन करती है और उसका पोषण करती है।''[1]

नारी– विमर्शः अर्थ व स्वरूप

'नारी–विमर्श' शब्द 'नारी' तथा 'विमर्श' इन दो शब्दों से मिलकर बना है जिसमें विमर्श से तात्पर्य है– विचार, विवेचन, परामर्श, समस्या का वर्णन आदि। अतः 'नारी–विमर्श' का शाब्दिक अर्थ है नारी, उसके प्रश्न, उसके अस्तित्व से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर किया गया विचार। इस प्रकार साहित्य में विचार विनिमय के माध्यम से स्त्री के जीवन संघर्ष एवं अस्तित्व पर मंथन करना 'नारी विमर्श' है। वस्तुतः नारी–विमर्श नारी को 'वस्तु' रूप से 'व्यक्ति' रूप में प्रतिष्ठित करने का आन्दोलन है। नारी का अपनी स्वयं की पहचान बनाने का विमर्श है। नारी विमर्श एक ही प्रकार की विचारधारा को लेकर चलने वाला विमर्श न होकर अनके विचारों को अपने साथ समाहित कर चलने वाला विमर्श है। यह विमर्श किसी एक ही नारी समाज या वर्ग को ही गति प्रदान नहीं करता वरन् समग्र नारी समाज को एक नई

चेतना प्रदान करता है। यह एक ऐसा आन्दोलन है जो नारी को पुरानी रूढ़ियों से मुक्त कराना चाहता है। नारी को 'वस्तु' रूप से मुक्त कराना चाहता है। जैसे **चित्रा मुद्गल** ने 'एक जमीन अपनी' में अंकिता के माध्यम से कहा है, ''स्त्री को स्त्रीत्व से मुक्ति नहीं चाहिए उन रूढ़ियों से मुक्ति चाहिए, जिन्होनें उसे वस्तु बना रखा है।''[2] नारी विमर्श पश्चिम के 'फेमिनिज्म' का रूप है। वर्तमान समय में जिस नारी–विमर्श की चर्चा की जा रही है उसकी नींव भी पश्चिम में नारी मुक्ति आन्दोलन से जुड़ी है। नारी विमर्श एक पश्चिमी अवधारणा है। वर्तमान समय में नारी–विमर्श को एक शास्त्र के रूप में भी अपनाया जा रहा है। **मृणाल पाण्डे** इसे एक दर्शन के रूप में देखती हैं, ''आज नारीवाद हमारे यहाँ एक अपरिचित या त्याज्य दृष्टिकोण नहीं बल्कि एक सार्थक स्वीकृत समग्र दर्शन के रूप में स्वीकार्य हो चला है।''[3] संक्षेप में हम कह सकते है नारी–विमर्श नारी को समग्रता से जानने, समझने और श्रेष्ठ बनाने की भावभूमि है। नारी विमर्श का सरोकार जीवन और साहित्य में नारी प्रयासों के मुक्ति से है। जिसमें नारी के लिए ऐसी विचार भूमि तैयार करें जिससे उसे उज्ज्वल एवं सुरक्षित भविष्य मिले।

हिन्दी साहित्य में 'नारी–विमर्श' की परम्परा

साहित्य में नारी विमर्श का चित्रण समाजानुकूल ही रहा है। हिन्दी साहित्य में विगत कुछ वर्षों से जिस नारी–विमर्श या स्त्री–विमर्श की चर्चा होती रही है उसका प्राचीन स्वरूप ऐसा नही था क्योंकि मध्य युग तक आते.आते नारी की स्थिती दयनीय हो गयी थी। नारी ईश्वर प्राप्ति की राह में बाधा के रूप में चित्रित होने लगी थी –

''नारी तो हम भी करी जान नहीं विचार,
जब जाना तब परिहरी नारी बड़ा विकार।

नारी की छांई परत ही अंधा होत भुजंग,
कबीरा तिन की कौन गति, नित नारी को संग।।'' [4]

आधुनिक काल में देश की स्थिति में परिवर्तन आया। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के कारण भारतीय समाज की विचारधारा में कुछ परिवर्तन आया तथा पाश्चात्य साहित्य में वर्णित विषय–वस्तु से भी साहित्य प्रभावित हुआ। अनेक समाज–सुधारकों जैसे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, एनी बेसेन्ट, राजा राज मोहन राय, दयानंद सरस्वती, विवेकानंद, गाँधीजी आदि समाज सुधारकों ने नारी की अवस्था को सुधारने का प्रबल समर्थन किया। जिसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। क्योंकि साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन मात्र नहीं है बल्कि अनेक प्रासंगिक विषयों पर चर्चा, चिन्तन, मनन और विमर्श करना भी है। यद्यपि रीतिकालीन साहित्य में नारी को केवल भोग की वस्तु मात्र ही समझा जाता था तथापि भारतेन्दु हरिशचन्द्र से लेकर आगे आने वाले नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार तथा कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नारी को केन्द्र में रखकर नारीवाद साहित्य की रचना की तथा नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया। आधुनिक काल में साहित्यकारों ने नारी चरित्रों को केवल नारी के रूप में चित्रित ही नहीं किया अपितु नारी जीवन के साथ न्याय भी किया। नारी की इस पीड़ा को चित्रित करने वालों में महिला रचनाकारों के साथ–साथ पुरूष रचनाकारों का भी सक्रिय योगदान रहा है। भारतेन्दु युगीन साहित्य में नारी–समस्या से नारी–महिमा तक का वर्णन मिला है। द्विवेदीयुगीन काव्य में नारी में वेदना, ममता, करूणा, त्याग और दायित्वबोध की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। छायावादी काव्य मूलतः श्रृंगारी काव्य है फिर भी इन कवियों ने नारी को मात्र प्रियतमा नहीं बल्कि देवी, माँ सहचरी आदि के रूप में चित्रित किया हैं। प्रगतिवाद में नारी को देवता के रूप से अलग रखकर

'मानवी' रूप प्रदान किया गया। इस प्रकार आधुनिक काल में स्त्री के सम्मान में कुछ वृद्धि हुई। उसे ''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गदापि गरीयसी'' अर्थात् माता और जन्मभूमि स्वर्ग से बढ़कर है, कहा जाने लगा तथा माना कि नारी की स्थिति में सुधार हुए बिना उन्नति नहीं हो सकती –

''पति को देव तुल्य हम माने, बच्चों की भी दासी हैं,
सेवा सदा करें नहीं सोचे भूखी हैं या प्यासी,
हे भगवान! हाय तिस पर भी उपमा कैसे पाती हैं
ढोल–तुल्य ताडन अधिकारी, हम बनाई जाती है।'' [5]

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी साहित्य में नारी जीवन को लेकर जिस प्रकार की रचनाएं लिखी गई हैं या लिखी जा रही हैं, वे स्त्री के प्रति सम्पूर्ण चिंतन प्रक्रिया को बदलने की क्षमता रखती है। जिसमें भी हिन्दी महिला साहित्यकारों लेखिकाओं ने विकासशील, समाजोपयोगी लेखन के माध्यम से हिन्दी साहित्य जगत को समृद्ध किया है। वर्तमान समय में नारी–विमर्श नारी को 'मानवी' रूप में प्रस्तुत करके उसके समस्त अधिकारों को प्राप्त कर देने की पहल करता है। नारी को नारी रूप में देखने की बात करता है। **नासिरा शर्मा** ने 'ठीकरे की मंगनी' में स्पष्ट कहा है कि 'हमें मर्द नहीं बनना है, न ही मर्द को औरत बनाना है– एक दूसरे का लबादा पहनने की यह ललक ही मुसीबत बन रही है। जरूरत है हमें अपनी–अपनी जगह खड़े होकर अपने आप को समझने और समझाने की।[6] नारी विमर्श में महिला लेखिकाओं के साथ–साथ पुरूष लेखकों ने भी अपनी भागीदारी निभाई है। नारी विमर्श केवल नारी लेखन में ही नहीं अपितु हर उस रचना में है जहाँ नारी के अधिकारो की, सम्मान की बात होती है। **ममता कालिया** के अनुसार, ''मैं नहीं मानती कि स्त्री विमर्श वहीं से शुरू

होता है, जहाँ स्त्री लेखन के शुरूआत होती है। स्त्री विमर्श तो हर उस जगह उस पर है, जहाँ स्त्री का प्रतिकार है।[7]

आधुनिक काल में नारी विमर्श के रुप में जिन लेखक–लेखिकाओं का योगदान रहा है उनमें – सम्प औरतें (मनीषा), स्त्री सरोकर (आशाराना व्होरा), स्त्रीत्व–विमर्श : समाज और साहित्य (क्षमा शर्मा), स्वागत है बेटी (विभा देवसरे), औरत के लिए औरत (नारिसा शर्मा), खुली खिड़कियाँ (मैत्रयी पुष्पा), आदमी की निगाह में औरत (राजेन्द्र यादव), स्त्री मुक्ति के प्रश्न (देवेन्द्र इस्सर), नारीदेह के विमर्श (सुधीर पचौरी), चुकते नहीं सवाल (मृदुला गर्ग) आदि रचनायें महत्वपूर्ण है जो हिन्दी साहित्य में नारी–विमर्श से संबंधित है।

नारी विमर्श वस्तुतः स्वाधीनता के बाद की संकल्पना है। नारी के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है। **डॉ. संदीप रणभिरकर** के शब्दों में – ''नारी–विमर्श नारी के स्वयं की स्थिति के बारे में सोचने और निर्णय करने का विमर्श है। सदियों से होते आये शोषण और दमन के प्रति नारी चेतना ने ही नारी–विमर्श को जन्म दिया है।'' वर्तमान समय में स्त्री विमर्श स्त्री को 'मानवी' रूप में प्रस्तुत कर उसमें समस्त अधिकारों को प्राप्त करा देने की पहल करता है। स्त्री जीवन की निजता का बोध यहाँ प्रमुख रूप से उपस्थित है। इसमें नारी मुक्ति की पहल की गयी है किन्तु सही मायनों में नारी मुक्ति तभी होगी जब उसे सामाजिक अधिकार प्राप्त होंगे। नारी मुक्ति आंदोलन के कारण आज नारी समाज को बदलने के प्रयास में कदम उठा रही है। इसमें नारी की समाज में स्वतंत्र राजनैतिक, कानूनी, पारिवारिक तथा आर्थिक इस समस्त अधिकारों को प्राप्त कर लेने की संकल्पना निहित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *समकालीन हिन्दी के पत्र साहित्य में नारी विषय चिंतन।*
2. *चित्रा मुद्गल – एक जमीन अपनी, सामाजिक प्रकाशन, नई दिल्ली।*
3. *चित्रा मुद्गल – एक जमीन अपनी, सामाजिक प्रकाशन, नई दिल्ली।*
4. *हिन्दी महाकाव्य में नारी चित्रण, डॉ. श्याम सुन्दर व्यास।*
5. *महावीर प्रसाद द्विवेदी – रसज्ञ रंजन*
6. *नासिरा शर्मा – ठीकरे की मंगनी, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली।*
7. *ममता कालिया से स्त्री विमर्श पर साक्षात्कार, हिन्दुस्तान पत्र 8 मार्च 2006*
8. *पंचशील शोध–समीक्षा।*

छायावादी कवयित्री : महादेवी वर्मा

अंजना कुमारी
अध्यापिका
महात्मा गाँधी हाईस्कूल,
आसनसोल, पश्चिम बंगाल, भारत

छायावाद के चार स्तम्भों में महादेवी वर्मा का स्थान महत्वपूर्ण है। प्रसाद, पंत और निराला से बिल्कुल अलग महादेवी का काव्य–संसार एक आत्मकथा है। 'यामा' के चार याम – नीहार, रश्मि, नीरजा और सांध्यगीत उनके निजी जीवन के काव्यात्मक रूपान्तरण है। महादेवी के लिए कविता व्यक्तित्व से पलायन नहीं, व्यक्तित्व का पुनर्सृजन है, उनका काव्य स्वतः स्फूर्त संवेदना का विस्तार है, उनके शब्दों में 'याम' मेरे अंतर्जगत के चार यामों का छायाचित्र है। ये याम दिन के हैं या रात के, यह कहना कठिन है। जिस अंतर्जगत का जिक्र वह करती है, उसमें घोर पीड़ा है अपार दुःख है, नैराश्य है, रहस्यमयता है, आस्था है, विश्वास है और जीवन के तमाम अनुभवों को झेलने का संकल्प है। महादेवी की कविता एक अनुभूत इतिहास है जिसका आधार उनकी संवेदना है, उनके गीत नारी के संपूर्ण जीवन को, उसके अनेक रूपों को बिंबों में साकार करते हैं, उनके बनाये चित्र उसके अनुपूरक हैं। परिवार और समाज के बनाये अग्नि–चक्र में जलती महादेवी मुक्ति का द्वार ढूढ स्थूल से सूक्ष्म तक की कठोर यात्रा

करती दिखाई देती है। उनका प्रेम विशेष से निर्विशेष की तलाश बन जाता है। महादेवी हमारे समय की मीरा है। उन्होंने लिखा है –

''विरह का जलजात जीवन
विरह का जलजात
वेदना में जन्म
करूणा में मिला आवास।''

इस उक्ति में सूफियों की अज्ञात से बिछुड़ने की बेचैनी और उससे अलग होकर अशेष गम का अहसास है, दीपक जैसे एकांतिक आत्मा का प्रतीक बन जाता है –

''मधुर–मधुर मेरे दीपक जल
युग–युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।''

यह कथन महादेवी की सशक्त मनोकामना है जो ऊर्जा बनकर गीत को सार्थक बनाती है। मिलन की कामना तब प्रखर होती दिखायी देती है जब प्राणों के ''अंतिम पाहुन'' को वारिद बनकर आने का निमंत्रण दिया जाता है क्योंकि तभी ''बेसुध जीवन'' होगा।

छायावादी कवियों में महादेवी की कविता सबसे अधिक संप्रेषण शक्ति रखती है। यहाँ उनकी कविता साहित्य की सबसे बड़ी शर्त पूरी करती है। ''मैं नीर भरी दुःख की बदली'' जब वह कहती है, तो उनकी वाणी सहज संबंध होने के कारण लोकप्रिय हो जाती है।

प्रसाद, निराला और पंत की तुलना में महादेवी का काव्य संसार छोटा और काव्य चेष्टा सीमित है। दार्शनिकता प्रसाद और निराला में भी कम नहीं है। अन्तर यह है कि दर्शन महादेवी के काव्य को अनुशासित करता है लेकिन प्रसाद और निराला उसे काव्यानुकूल बनाने की चेष्टा

करते हैं। हृदय के सूक्ष्म भावों की व्यंजना तो सभी छायावादी कवियों ने की, किन्तु केवल महादेवी ही अपनी अंतर्मुखता को एकांतिक और वाह्य निरपेक्ष रूप देती है। उन्हें यथार्थवाद सूक्ष्म तथा आध्यात्मिकता के प्रति अपनी निष्ठा का विपर्याय जान पड़ता है अतएव वे उसे जीवन से बाहरी या विजातीय वस्तु ही मान लेती है।

महादेवी में अपार करूणा और सहानुभूति है। यह करूणा और सहानुभूति उनके व्यक्तिगत जीवन में और उनकी काव्येतर रचनाओं में भी अभिव्यक्त हुई है – परंतु उन्होंने अपनी कविता को इसके प्रभाव से सदा बचाया है। उनकी कविता एकांत क्षणों की वाणी है। इन क्षणों में वे केवल आत्म साक्षात्कार करती है। इस आत्म साक्षात्कार से प्राप्त अनुभव उनके काव्य के विषय हैं। अपनी हर साँस का इतिहास लिख डालने को आतुर कवयित्री गद्य में तो अपनी सामाजिक भावना को व्यक्त करती हैं और कविता में अपने विशिष्ट आत्मीय जीवन–प्रसंगों को।

महादेवी की करूणा, उनका दुःख और उनकी पीड़ा उनकी वैयक्तिकता, उनके बुद्ध के दर्शन के प्रति अनुरक्ति और उनकी आध्यात्मिकता के संस्पर्श से ओतप्रोत है जिसे सिर्फ दुःखवाद की संज्ञा से अभिहित करना उनके प्रति अन्याय है।